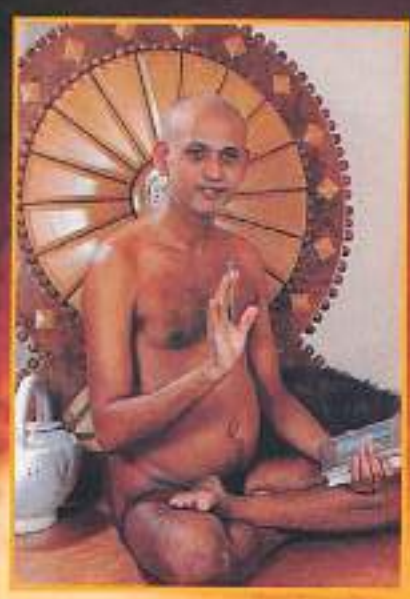

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

Designed & Printed By: CHANDRA COPY HOUSE (P) LTD., AGRA (U.P.) Ph. 2463195

कविराज वारिजभूषण विरचित

महीपाल चरित्र

निर्ग्रंथ ग्रंथमाला

कविवर चारित्रभूषण विरचित

महीपाल चरित्र

• सम्पादक •

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

प्रस्तुति: निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला

संस्करण : प्रथम - 1500 प्रतियाँ सन् 2007
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
निर्ग्रंथ ग्रंथमाला : ग्रंथाक-131

ग्रंथ : महीपाल चरित्र
ग्रंथ प्रणेता : कविवर चारित्रभूषण
पावन आशीष : प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज
सम्पादक : उपाध्याय मुनि निर्णय सागर
सहयोगी : ऐलक १०५ श्री विमुक्त सागर जी
क्षुल्लक १०५ श्री विशंक सागर जी
प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला
मूल्य : स्वाध्याय (सहयोग राशि २०/-)
ग्रंथ प्राप्ति स्थान : १.चन्द्रा कॉपी हाउस, १४/१०, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.)
२.निर्ग्रंथ ग्रंथमाला, श्री दि. जैन ऋषभदेव मंदिर,
ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)
मुद्रक : अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.) फोन: २४६३१९५

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं ॥17 ॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्तिप्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्तिकी भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्तिनहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्तउन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्तिनित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (फिरोजाबाद)
03.12.2000

देहरा तिजारा (अलवर, राज.) में
१००८ श्री चन्द्रप्रभ भगवान
की स्वर्ण जयंती (५०वीं प्रकट तिथि)
के पुनीत अवसर पर प्रकाशित
ग्रंथाक — ३१

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

महीपाल चरित्र

कविवर चारित्र भूषण विरचित

पुण्यार्जक श्रावक

गढ़ाकोटा (म.प्र.)
के एक गुरुभक्त द्वारा
सादर गुप्त दान

धन, पद, यश पाने में, स्पर्धा करता है प्राणी।
किन्तु ज्ञान धन, सम्यक् श्रद्धा, व्रत में करता नहीं प्राणी॥
चेतन की निधि लूटो ऐसे, ज्यों रंक निधि को गहता है।
वे निजासक्त, विरागी पर से, निर्णय होते कल्याणी॥

आद्य वक्तव्य

-अनगार निर्णय सागर

महीपाल चरित्र नामक यह उत्तम ग्रंथ लघु काय होते हुए भी अपने अन्दर अनेकों विशेषताओं को लिए है। महीपाल नामक राजपुत्र का जीवन संघर्षों से परिपूर्ण रहा। किन्तु उन्होंने संघर्षों को बड़े ही समता भाव के साथ सहन किया। जो व्यक्ति संघर्षों को समता से सहन करता है, वह महानतम अवस्था को प्राप्त हो जाता है जैसा कि कहा भी है-

जिसने भी शुद्ध मनोबल ये कठिन परीसह झेली है।
सब ऋद्धि नत हो कर उनके चरणों में खेली हैं।

कथा नायक महीपाल स्वामी का यह जीवन चरित्र चारों पुरुषार्थों की प्रेरणा देने वाला है, प्रारंभ से महीपाल स्वामी जी धर्मप्रिय, परायण, पितृ भक्त रहे बाद में धनार्जन करने हेतु द्वीपान्तर को गये तथा कामपुरुषार्थी स्वरुप उन्हें सोम श्री, चन्द्रलेखा एवं विजितारी की पुत्री इन चारों के साथ न्याय पूर्वक विषय सुख सेवन करते हुए काम पुरुषार्थ पूर्ण किया तथा अंत में दीक्षा लेकर मोक्ष पुरुषार्थ को प्राप्त किया। यह चरित्र गागर में सागर के समान है। श्रावक व साधुओं के लिए अत्युपयोगी है। मुनिराज भी नंदिसेन के व विश्व भूषण के शिष्य चरित्र भूषण विरचित यह ग्रंथ लोकोपकारी है। इसकी विषय वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है-

महीपाल देश की अवन्ति पुरी में नृसिंह राजा की विभूति का वर्णन, महीपाल की पितृ भक्ति का वर्णन, महीपाल के कला प्रेम का वर्णन, पिता का पुत्र पर कुपित होना, महीपाल का परदेश गमन, भृगुकच्छ पुर पहुँचना, जहाज द्वारा सागर श्रेष्ठी के साथ परदेश गमन, जहाज का फट जाना, सोम श्री व महीपाल का विछुड़ जाना, महीपाल का तत्व चिंतन, देवद्वार सेठ की कथा, हाथी की कथा, राज्य सम्मान पाना, गुण धवल मंत्री की स्त्री गुणवती की शील रक्षा हेतु अनुपम न्याय करना, बैरी सिंह राजा की लड़की चन्द्रलेखा के साथ शादी होना, कुछ कालोपरान्त रत्नसंचयपुर नगर की ओर चलना, अथर्णव मंत्री द्वारा महीपाल को समुद्र

में पटक देना, सोम श्री का फांसी लगाकर मरने की चेष्टा करना, सिंहल द्वीप के रमणीक पुर के जितशत्रु व रानी पुष्पचूला की पुत्री शशि प्रभा से शादी होना, देवोपुनीत खाट, यष्टि, व काय रूपिणी विद्या की प्राप्ति होना, अथर्णव मंत्री का चन्द्रलेखा पर मोहित होना, सोमश्री, चन्द्रलेखा व शशिप्रभा का रत्नसंचय पुर में पहुँचना, राजा की घोषणा पर तीनों को बुलवाना, अथर्णव मंत्री द्वारा बौने ज्योतिषी पर उपसर्ग करना, सत्यता का प्रकट होना, अथर्णव मंत्री के दिल की गति रुक जाने से मरण होना, विजितारि राजा की पुत्री से महीपाल की शादी होना, पुनः महीपाल का अपने देश को लौटना, जय राजा के साथ युद्ध होना, सुधर्म स्वामी को केवल ज्ञान होना, नृसिंह राजा का जिन दीक्षा लेना, दीर्घकाल तक महीपाल का राज्य करना तथा अंत में धर्म घोष मुनि से जिन दीक्षा ले चार घातिया कर्मों को क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त करना, केवली अवस्था में बिहार कर केवली समुद्घात के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना इत्यादि विषयों का इस ग्रंथ में रोचक कथन है, यह ग्रंथ पठनीय, मननीय, श्रवणीय व श्रद्धानीय है। इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद करने वाली गणिनी आर्यिका श्री विजयामती माता जी के लिए सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद एवं इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी ऐ. श्री विमुक्त सागर जी, क्षु. श्री विशंक सागर जी को समाधिरस्तु एवं प्रकाशक निर्ग्रंथ ग्रंथमाला एवं मुद्रक श्री अनिल कुमार जैन चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा, पुण्यार्जक सुधी श्रावक एवं प्रत्यक्ष व परोक्ष में अन्य समस्त सभी सहयोगियों को उनके सम्पूर्ण परिवार सहित आशीर्वाद।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ छद्मस्थ साधक द्वारा जो कुछ त्रुटि रह गई हो तो सकल संयमी विज्ञजन उन्हें क्षमा करते हुए संकेत देने का कष्ट करें। तथा सुधी पाठक गुणग्राही दृष्टि बनाकर विनय व विशुद्ध भावों से युक्त हो विधि पूर्वक ग्रंथ का आद्योपांत स्वाध्याय करें।

"इति अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
1. 1. 2001 एटा (उ. प्र.)

कविराज चारित्रभूषण विरचित

महीपाल चरित्र

श्लोक

भूयांश देशेशित कुंतलाली, दूर्वांकुरालीव विभाती नीला।
कल्याण लक्ष्मी बसति सदिश्या, दादीश्वरा मंगल मालिकाञ्च॥

अर्थ-जिनके वृहद्स्कंधों पर श्याम केशों की पंक्ति शोभित है, हरित दुर्वांकुरों की पंक्ति के समान जो जन-मन को हरण करने वाली है तथा जो आदिब्रह्मप्रभु कल्याण लक्ष्मी-शिव मोक्ष के निवास हैं, वे मंगल रूप प्रभु आपको श्रेष्ठ कल्याण समूह प्रदान करें। पूज्यपाद स्वामी ने अपने इष्टोपदेश में कहा है-

अज्ञानो-पास्तिज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयाः।
ददाति यन्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वंचः॥२३॥

अर्थात् अज्ञानी व ज्ञानी की उपासना, सेवा से क्रमशः अज्ञान व ज्ञान की प्राप्ति होती हैं क्योंकि जिसके पास जो होता है वही वह उपासक भक्त को देता है। अस्तु! आदीश्वर प्रभु मोक्ष श्री के निवास हैं, इसलिए आप भक्तों को भी वही चिर-लक्ष्मी-मुक्ति श्री के दाता होवें॥1॥

चिदानन्द स्वरूप जिनेन्द्र प्रभु के मुखारविन्द से निर्गत द्वादशाङ्ग रूप शारदा-सरस्वती माता, भेद विज्ञान रूप परमपैनी बुद्धि भव-भव में प्रदान करें। सत्वाणी के प्रसाद से मूर्ख-अज्ञानी जड़बुद्धि मनुष्य भी क्रमशः द्वादशाङ्ग वाणी के पारङ्गत हो जाते हैं॥2॥

सत्सङ्ग स्मरण

पुण्यरूप अद्वितीय सार सम्पन्न सत्पुरुष जग के हितकारी होते हैं। परोपकार उनका व्रत होता है। पर का कल्याण करने में सदा तत्पर रहते हैं। अपने शत्रु का भी भला चाहते हैं, फिर मित्र का हित क्यों नहीं चाहेंगें। अर्थात् मित्रों के कार्य में तो अवश्य ही सहयोग प्रदान करेंगे। मेरा कार्य निर्विघ्न हो एतदर्थ उनका स्मरण करना आवश्यक है।

दुर्जन स्मरण

सज्जन की भाँति दुर्जन भी निजकार्य सम्पादन में मनुष्य को सावधान करते हैं। यदि विघ्न भय न हो तो मनुष्य अपने कार्य में निश्चिंत होकर प्रमादी हो जावें। अर्थात् विघ्न भी कार्य स्मरण कराने में सहायक है।

ग्रंथकार की प्रतिज्ञा

ग्रन्थकर्ता श्री चारित्रभूषण कवि प्रथम ग्रन्थ रचना की प्रतिज्ञा करते हैं। मैं चारित्रभूषण कवि श्रीमत् वृहद् लक्ष्मी-राजलक्ष्मी एवं कला श्री से सम्पन्न श्री महीपाल राजा का मनोहर चरित्र परोपकार की भावना से कहता हूँ। इस काव्य रचना में नव रसों का सुन्दर सन्निवेश है जिससे यह आबाल वृद्ध अज्ञ-विज्ञ सभी को आनन्ददायक है। यह उपाख्यान वास्तव में सर्वसाधारण जीवों के लिए अनुकरणीय है। जीवन की जटिल समस्यायें कैसे सरलता से सुलझाई जा सकती हैं, इससे भली प्रकार अवगत होता है, स्वार्थी मानव की कुटिलता और उसका दुर्विपाक एवं सत्य की विजय, कला का प्रकाश इसमें बड़ें सुन्दर ढ़ंग से समझ में आता है। विद्या की महिमा, सम्यग्ज्ञान का महत्व समझकर प्रत्येक कल्याणेच्छुक इससे लाभान्वित होगा।

सद्धर्म की महिमा

भंयकर दुखमय संसार में धर्म ही एक शरण है। धर्म ही सर्व मंगल दायक है। धर्म हितैषिणी माता के समान मनुष्य का सर्व प्रकार अपायों को दूर कर रक्षण करता है। सम्पूर्ण विपत्तियों का निवारक एक मात्र धर्म है, धर्म पिता के समान इच्छित पदार्थों का दाता है एवं धर्म ही सच्चे मित्र के समान हर्ष करने वाला है। नारी की शोभा उत्तम निर्दोष शील है, गुणज्ञ शिष्य की शोभा विनय है। धर्म नेता या मोक्ष मार्ग का प्रवर्तक नय स्याद्वाद द्वारा शोभित होता है। मोक्षाभिलाषी निस्पृही-निर्ग्रन्थ वीतरागी साधु क्षमागुण धारण कर शोभित होता है। उसी प्रकार मनुष्य भव की शोभा, सफलता धर्म धारण करने से होती है। निर्ग्रन्थ पूज्य, चक्षुविहीन मूर्ख, सुपत्र हीन कुल, निर्जल सरोवर, गुणविहीन रूप सौन्दर्य, व्यर्थ है। उसी प्रकार धर्मविहीन नरजन्म निरर्थक है। धर्म के प्रभावसे मनुष्य उत्तम रूप अपरिमित धन, अपरिमित ऐश्वर्य, निर्मल यश, सदाचार, शिष्टबुद्धि एवं विविध कलागुणों को प्राप्त करता है। परन्तु महीपाल चरित्र इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि पुण्य विहीन मनुष्य प्राप्त वैभव को भी खोकर दीन हो, नाना दुखों का भाजन होता है। जबकि पुण्यात्मा अनेक जाति की विपत्तियों में पड़कर भी कल्याणकारी सुख सम्पदाओं का स्वामी होकर यशस्वी होता है।

कथारम्भ

अनन्तों तीर्थङ्करादि सत्पुरुषों का जन्मदाता सुप्रसिद्ध भरत क्षेत्र है। इसमें मालव देश अति रमणीक है। जिसमें अवन्ती नगरी अपनी शस्य श्यामला भूमि पर शोभायमान हो रही है, जो कि सर्वप्रधान है। तथा न्याय प्रवृति से विरोध मान्य है न्यायी राजा के शासन में प्रजा सुखी है। शत्रुओं से रहित है। गगन चुम्बी विशाल प्रासाद हैं। सूर्य के मन्द-गमन से ऐसा प्रतीत होता है मानों इन उतुङ्ग सौध-महलों से टकराने के भय से वह

धीरे-धीरे गमन कर रहा है। धन-धान्य से सम्पन्न है। नाना फल-फूलों से भरित हरित उद्यान शोभित हैं। नगर की रक्षार्थ विशाल उचित कोट व खाई है। बड़े-बड़े वीर योद्धा रक्षा करते हैं। स्वामी भक्त वीर भटों से महान् बलवान शत्रु भी प्रकम्पित एवं भयभीत रहते हैं। विशाल सुन्दर पापनाशक भव्य जिन भवन शोभायमान है। प्रासादों की भव्यपंक्तियों से स्वर्गपुरी के समान प्रतीत होती है। इसके निवासी भव्यजन स्वर्गसम्पदा और श्री को भी तुच्छ समझते है। देवपुरी में लक्ष्मी का धनी एक मात्र कुबेर है। वह भी दानविहीन है। परन्तु इसी अवन्तीपुरी में हजारों धनाढय दाता अपना धन मुक्त हस्त से लुटाते हैं, दान करते हैं। पुण्य महिमा प्रदर्शन कर पुण्य धर्म, पुण्यानुबन्धीपुण्य संचय की प्रेरणा करते हैं। यह अनेक लक्ष्मी पति व राज श्रेष्ठियों से भरी हुयी है। जवाहिरातों व रत्नों की राशियां यत्र तत्र बिखरी हुई पड़ी है, आकाश मण्डल ताराओं से रंजित है, उसी प्रकार यह नगरी अनेकों मंगल कल्याण क्रियाओं से व्याप्त आकाश का तिरस्कार करती है। अनेकों प्रकार के श्री मुनि गण यहाँ विविध प्रकार के तपश्चरण कर इस नगरी को सनाथ बनातें हैं। आकाश में एक ही गुरु ग्रह उनका दीपन करता है। अकाश में कलावान एक चांद है, अवन्ती में अनेकों गुण कलाओं से सम्पन्न नर रत्न हैं। आकाश में मन्द शनैश्चर ग्रह और बुद्ध सूर्य ग्रह हैं और यहाँ अनेकों सूरवीर शोभायमान हैं। जिस प्रकार शुक्रतारा नाना वर्गों से नभ की शोभा बढ़ाता है उसी प्रकार यहाँ ब्राह्मण परिवार, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र चारों ही वर्गों के लोग नगरी की श्री बढ़ाते हैं। सर्वत्र धर्मानुष्ठानों से पवित्र नगरी पुण्य का फल साक्षात् दर्शा रही हैं।

इसका राजा नृसिंह यथा नाम तथा गुण था। मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी था। शत्रुओं को यथापशामक शिष्टों का पालक था। सभी प्रजा निर्भय हो अपने-अपने कार्यों में प्रवृति थी, सुखी, सम्पन्न और धर्मात्मा थी। सर्व सुखी सम्पन्न थे, हां यदि कष्ट था तो शत्रुओं की नारियों को ही था। उसके राज्य में ईति, भीति, अनावृष्टि आदि उपद्रव

कभी नहीं होते हैं। क्योंकि सभी जन दान पूजा विधान अनुष्ठानादि में रत थे। आगम में कहा है-

ज्ञानवान ज्ञान दानेन, निर्भयो अभय दानतः।
अन्न दानात्सुखी नित्यं, निरामयो भैषजाभ्दवेत्॥

अर्थात् ज्ञान-(शास्त्र) दान से मनुष्य विशिष्ट ज्ञानी, अभय दान से निर्भय, शूर-वीर पराक्रमी, अन्न दान से सतत सुखी धन-धान्य एवं औषध दान से निरोग आधि-व्याधि से रहित होता है। यहाँ यह विचारणीय है कि यदि हमें भेद विज्ञानी सच्चा ज्ञानी बनना है तो निरन्तर ज्ञानदान, ज्ञानाभ्यास करने कराने में तल्लीन रहें। निर्भय, निर्भीक, धर्मसिंह बनना है, भौतिकवादी गीदड़ों पर विजय पाना है तो सर्व प्राणियों का-रक्षण करें। दीनदुखियों को करुणा दान प्रदान करें। शरीर से ज्ञान-ध्यान तप, संयम साधना करने के लिए निरोग होना आवश्यक है और इसका साधन है औषधि दान, शुद्ध औषधि दान के प्रभाव से ही कृष्ण महाराज ने तीर्थंकार गोत्र का बन्ध कर लिया था। नृसिंह राजा की प्रजा चारों प्रकार का दान करने में दत्तचित थी। इसलिये सब सुखी सम्पन्न थे।

स्वयं राजा भी दानवीर सद्गुणानुरागी, प्रजावत्सल, स्वजन स्नेही मित्रों में मैत्रीभाव धारी, शस्त्रविद्या निपुण युद्धकला प्रवीण, शास्त्राभ्यासी एवं धर्मानुरागी था। राजा के प्रताप रूपी सूर्य के समक्ष शत्रुदल रूपी अंधकार विलीन हो गया था, भला प्रकाश और तम की मैत्री कैसे हो सकती थी। एक विशेष महत्व यह था कि भानु का उदय होने से कमलिनियाँ संकुचित हो जाती हैं, किन्तु राजा के प्रताप भास्कर ने शत्रुवनिताओं के मुख कमलिनियों की शोभा का सर्वथा अपहरण कर लिया था।

पुण्य की महिमा बड़ी विचित्र होती है। गुणवान राजा के कुछ समय बाद रूप, विद्या, कलागुण युक्त सुन्दर, बुद्धिमान, जगत में विख्यात

महीपाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। नाना कलाओं से युक्त, विनम्र, पितृभक्त आज्ञाकारी नर रत्न महीपाल सर्व गुणों सहित वृद्धि को प्राप्त हुआ। यौवन सम्पन्न महीपाल का विवाह अपूर्व कला लावण्यमयी शील शिरोमणि लज्जा विनयादि गुण सहित विदुषी पति भक्त सोमश्री के साथ हुआ। दोनों का जीवन मणिकाञ्चन संयोगवत् सुशोभित हो गया। उनकी श्री भोग विलासादि से वे दोनों, कामदेव रति समान प्रतीत होते थे। अथवा लक्ष्मी सहित नारायण ही हों। गांभीर्य से वे दोनों महादेव पार्वती समान जान पड़ते थे, वह धीर वीर विचारज्ञ सदा सत्पुरुषों के साथ रहता, गुरुजनों की सेवा करना ही अपना कर्तव्य समझता था। श्रवण कुमार के समान उसकी पितृभक्ति प्रशंसनीय थी। वह सदैव पिता की सेवा में तत्पर रहता था। राजा नृसिंह प्रत्येक राजकार्य में राजकुमार महीपाल की राय लेते थे। उसकी बात को मान्य करते थे। और वह भी अपनी अन्योक्ति (परमत की कथा) वक्रोक्ति (वचनकला-सत्यार्थकथा) का प्रयोग कर समस्त सभासदों को आश्चर्य चकित कर राजा का मन रंजायमान करता था। वह चतुर अपने गुणों से सबके मन को हरण कर लेता था।

जिस प्रकार निर्विकल्प ध्यानी मुनि ध्यान में लीन रहते हैं, मुनिराज ध्यान और वैराग्य ही को जानते हैं, भोगीजन ही पञ्चेन्द्रियों के भोगों का स्वाद समझते हैं, वियोगी जन ही विरह जन्य दुःख का अुनभव करते हैं। गान विद्या का प्रेमी हरिण ही संगीत का अद्भुत आनन्द लेता है, सच्चा सूर-वीर ही रणभूमि में प्राणों की बाजी लगा विजय पताका उड़ाने का मजा लेता है। कवि ही कविता की पहचान करने में एकाग्र होता है। गुणवान ही गुणज्ञ के गुणों का सम्मान करता है। उसी प्रकार युवराज महीपाल अपने पिता की सेवा में निपुण पितृभक्ति का आनन्द लेता था। राजा उसकी पारखी बुद्धि पर न्योछावर था। उसकी हस्तपरीक्षा, अश्वपरीक्षा, रत्नपरीक्षा आदि की प्रवीणता देख-देख कर फूला नहीं समाता, परन्तु महीपाल तनिक भी अहंकार नहीं करता था। राजा की कृपा का अंहभाव

उसे छू भी नहीं सका था। उसके सोने के दिन और चाँदी की रात अमन-चैन से व्यतीत होने लगी। उसकी यश की सौरभ के प्रसार से राजा प्रसन्न था किन्तु वह अहर्निश अपनी ही सेवा में रखना चाहता था। एक क्षण भी उसे वियुक्त नहीं होने देता। वह भोग्य जीविका प्रदान करता। हर प्रकार के सुख साधन देता।

पिता पुत्र का मतभेद

एक दिन बड़े दुलार से राजा ने कहा बेटा तुम हर घड़ी मेरी ही सेवा में रहा करो। हे गुणज्ञ, प्रचुर बुद्धिनिधान राज प्रासाद के अन्दर या बाहर मेरे साथ-साथ ही आया जाया करो। क्षणमात्र भी तुम्हारा वियोग मेरे लिये असह्य है। राजा की आज्ञा प्रमाण रहने से उसकी प्रसिद्धि दिनों-दिन बढ़ने लगी, जैसे रजनी गंधा की महक (सुगंध) सांझ होते ही बिखरने लगती है। बेला की महक रात ढलने पर बढ़ने लगती है। राजा की कृपा और देव का दर्शन, और सत् पुरुषों की वाणी अमोघ रहती है।

एक दिन वह राजकुमार राजा को किसी कार्यवश व्याकुल देखकार्यन्तरों में फंसा समझकर स्वयं बाहर चला गया। कुछ कलाकारों, विद्या-विशेषज्ञों, कलाशास्त्र पारंगतों से भेंट कर विशेष कलाओं का अध्ययन करने लगा। कला-प्रेम का प्रेमी उसके आनन्द रस में डुबकी लगाने लगा और उधर पिता की सेवा का समय उल्लंघन होने लगा।

एक दिन कुमार सेवाकाल उल्लंघन कर उपस्थित हुआ। पिता के कारण पूछने पर उत्तर दिया "मैं तो सदा आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। समय पाकर यदा-कदा कुछ पण्डित विद्वानों के सम्पर्क में जाकर कलाशास्त्र का अभ्यास करता हूँ।" युवराज सत्यवादी था। इसलिए निर्भीक था। पिता उत्तर सुनकर कुछ व्यग्र हो बोला बेटा ! कलाभ्यास से क्या प्रयोजन ? धन जीवन का रक्षक है, कलाभ्यास से क्लेश भांव ही प्राप्त

होगा। मेरी सेवा में तो राजगद्दी मिल सकती है। वैभव से सर्वसुख उपलब्ध होते है। धनी का आदर होता है। धनाढ्य के सब सेवक बन जाते हैं। ऐश्वर्यवान का सब जगह आदर होता है। अस्तु तुम्हें कलाभ्यांस का व्यामोह छोड़ कर मेरी ही सेवा करना उचित है।

अरे, क्या ? व्याकरण पढ़ने से क्षुधा शान्त होती ? काव्य रसपान से क्या प्यासे की तृषा बुझ सकती है ? अरे छंद शास्त्र पढ़कर किसी ने भी कुल का उद्धार किया है ? कला के पीछे भूत न बन धनोपार्जन कर, धनवान के आश्रित सभी गुण शोभा पाते हैं। कहा भी हैं-

"सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयान्ति"

समस्त गुण काञ्चन-वैभव के आश्रित रहते हैं।

कुमार ने सब कुछ सुना स्वीकृति रूप आश्वासन भी दिया। सेवा में भी तत्पर हुआ। परन्तु कलाभ्यास रूप व्यसन से विमुख नहीं हो सका। सच ही हैं-

"जो जाके गुण जानहिं, सो तिहि आदर देत।
कोयल अम्बा लेत है, काक निबौरी हेत॥"

रसाल (आम) और निबौली (नीमफल) एक साथ पकते हैं। कोयल आम खाती है परन्तु कागा निबोली ही खाता है। क्योंकि जो जिसके गुणों से परिचित होता है वह उसी संचय व सम्मान एवं प्रयोग करता है।

राजकुमार महीपाल पिता की सेवा यथा-योग्य करता था परन्तु कलाप्रेम बढ़ता गया। सेवा का समय कम होने लगा। पिता को यह खटका। वह चाहता था कुमार मेरी सेवा के अतिरिक्त कुछ न करे। इधर कुमार का विद्यानुराग, कलाप्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होने लगा। दोनों पिता पुत्र की भावनाओं का विभेद होने लगा। फलतः दोनों पिता-पुत्र की भावनाओं में विभेद होने से पवित्र स्नेह-प्रेम भी दोगला होने लगा। राजा को कला के प्रति विकर्षण था तो युवराज को पराधीन जीवन से घृणा।

उसे कला में रुचि थी, गुणों में अनुराग, कुशलता में प्रीति और स्वाधीनता में सच्चा आनन्द था। वह पिता की अपेक्षा भली प्रकार अनुभव करता था कि स्वतन्त्र जीवन परम हितकर सुखकर है और पराधीनता सर्व अनर्थों की व आत्मा पतन की जड़ है। कहा भी हैं-

जो नर सदा पराये मुख को खड़े-खड़े ही तकते हैं।
उनके हाथ कुछ नहीं आता और न कुछ कर सकते हैं॥

युवराज ने अनुभव किया कि वनिता, अग्नि और भूपाल इनका मध्यवृति से सेवन करे वही चतुर है, अतः मुझे भी यही करना योग्य है। उचित काल विभाजन कर सेवा भी करता और कलाभ्यास भी करता रहा। परन्तु विद्या से प्रेम सबको समान नहीं होता। राजा को यह सहन नहीं हुआ। एक दिन कुपित होकर कुमार से बोला, हे कुमार तू जीविका तो मेरी दी हुई भोगे और सेवा नहीं करे यह महान् कृतघ्नता है। तुझे मेरे अनुकूल चलना ही पड़गा। विनम्रता से कुमार ने उत्तर दिया पिताजी आपकी आज्ञा मान्य है। आप पूज्य हैं। आपकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है। यह मैं जानता हूँ और यथायोग्य करता भी हूँ। किन्तु विद्या विहीन नर बिना सींग-पूंछ का पशु है। पिताजी कलावन्त पुरुष की शोभा है, आप भी मेरी कला के कारण ही मेरा सम्मान करते हैं। राज सभा में मुझे आगे रखते हैं, लोग मेरी प्रंशसा करते है। फिर आप मेरा कलाभ्यास क्यों छुड़ाना चाहते हैं? मैं कलाभ्यास छोड़ने को तैयार नहीं। इसके लिए आप क्षमा करें।

कला का महत्व-कला गुण विशिष्ट मनुष्य का यश चारों ओर व्याप्त होता है मूर्ख मनुष्य का रूप लावण्य, धन, वैभव व्यर्थ है। समुद्र पिता से बहिष्कृत भी चन्द्र, कलागण सहित होने से शम्भु के मस्तिष्क पर शोभित होता है कलावान पुरुष के अनेकों दुर्गुण उसकी कला के आंचल में छुप जाते हैं। लोक में कहावत है कि, नारायण (देवों) ने एक बार समुद्र का मन्थन किया। उसने उसमें से नवरत्न निकाले, उसमें चन्द्रमा भी एक रत्न था। यद्यपि चन्द्रमा में कलंक है (मृग लांछन है) वह रात्रिका करने

वाला है, पिता से (समुद्र से) उपेक्षित है मित्र (सूर्य) से रहित है। तो भी अपने कला गुणों के कारण लोकमान्य है। पूज्य है। एक कला मात्रधारी शशांक को द्वितीया के दिन देखने के लिये लोग पलक पांवड़े विछाये प्रतीक्षा करते हैं। कला की वृद्धि के साथ उसका आदर, सत्कार महत्व बढ़ाता जाता है। उसी प्रकार कलावान पुरुष कलङ्की होने पर मित्र, हितैषी, बांधवों से विहीन भी है तो भी चन्द्रमा सदृश लोक प्रिय हो जाता है लोकमान्य ही सर्वप्रिय बन जाता है। राज्य भी विद्या के समक्ष तुच्छ है।

विद्या कला के सामने राज्य का कोई महत्व नहीं। कलाधारी गुणज्ञ पुरुषों के सामने राजा का कोई भी प्रभाव नहीं। राजा अपने राज्यान्तर्गत ही शोभा पाता है किन्तु विद्वान कलागुणधारी सर्वत्र सम्मान का पात्र होता है, प्रशंसनीय होता हैं। देखिये नीतिकार भी यही कहते हैं-

विद्वत्वंच नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते॥

अर्थात् राज्य से महान् सदज्ञान-विवेक कला है। युवराज के इन सत्य, योग्य वचनों को सुनकर राजा क्रोधित हो गया। सच है स्वार्थ में अंधा मनुष्य यथा योग्य विचार विहीन हो जाता है। क्रोध से संतप्त राजा ने उसी क्षण महीपाल कुमार को भर्त्सना कर राज्य से बाहर जाने की आज्ञा दी। कठोर वाणी में कहा ! उद्धत् पुरुष तुझे कला का अहंकार है, तू विद्या के मद में झूम रहा है। जा निकल मेरे राज्य से देखूं तू किस प्रकार धन वैभव राज्य सम्पदा का उपार्जन करता है तेरी कलाभ्यास तभी समझूंगा जबकि तू इसके बल पर प्रभुता कर राज्य पा सकेगा। सुनते ही कुमार का वीरत्व जाग उठा। उसे विस्मय अवश्य हुआ कुछ क्षोभ भी हुआ, क्योंकि बिना अपराध पिता ने धन हरण किया और घर विहीन भी। फिर भी उसने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। उसे विश्वास था अपनी दूरदर्शिता पर विवेक और विज्ञान पर। वह उठा। पुनः विचार करने लगा शास्त्र, राजा और वनिता ये तीनों ही अस्थिर-चंचल हैं इनका विश्वास नहीं करना

चाहिए। अर्थात् इन्हें ढीला नहीं छोड़ना चाहिए। इनसे सतत् सावधान रहना चाहिये। देखों शास्त्र का बार-बार अभ्यास चिन्तन मनन करने पर भी चलाचल हो जाता है। विस्मृत हो जाता है राजा सेवा करने पर भी कब कुपित होगा और कब नहीं इसका भी पता नहीं? चलता और स्त्री भी स्वछन्द छोड़ने पर दूसरे की हो जाती है। ये तीनों सावधानी से सेव्य हैं अर्थात् तीनों पर हमेशा सतर्क रहना योग्य है। जो भी हो, अब मुझे अपना कर्तव्य विचारना है।

महीपाल का उपाय चिन्तनः-बुद्धिमान पुरुष को लक्ष्मी, स्त्री (वनिता) नृप-राजा और दुर्जन का विश्वास नहीं करना चाहिए। ये चारों ही धोखेबाज हो सकते हैं। ये कब विपरीत होकर अहित कर बैठे इनका कोई विश्वास नहीं। उपेक्षित होने पर नियम से विपरीत हो जायेंगे। ये चारों स्वार्थी विद्युत बिजली के समान चंचल, पर को ठगने में चतुर हैं।

महीपाल अत्यन्त व्याकुल हुआ। परन्तु धैर्य नहीं छोड़ा। उसने विचार किया सब कुछ दैव (भाग्य) के हाथ है कर्मानुसार जीव को अनुकूल या प्रतिकूल सामग्री उपलब्ध होती है। अथवा यों कहो कि शुभाशुभ का कर्मोदय के अनुसार प्रतिकूल भी अनुकूल, और अनुकूल पदार्थ भी प्रतिकूल हो जाता है। राजा का अपराध नहीं है। यह सब मेरे पूर्वार्जित कर्मों का फल है। राजा या रानी कौन किसका होता है कौन किसे सुख दुःख दे सकता है? साता असाता के उदयानुकूल सुख दुःख में निमित्त मात्र होते है। हाँ पुरुषार्थ से अनुकूल निमित्त एकत्रित कर कार्य की अवश्य सिद्धि की जा सकती है। अब मुझे उद्योग करना चाहिए। भाग्य-दैव के आश्रित रहना ठीक नहीं। समर्थ, साधन जुटाकर कार्यारम्भ करना चाहिए। इस प्रकार महीपाल-राजकुमार विचार कर अपने महल में गया। यथा नाम तथागुण सोमश्री ने अति विनम्र हो पति का स्वागत किया। चन्द्रमा समान आनन्द की प्रदाता शीलवती सोमश्री का मुखचन्द्र

खिल रहा था। वह बड़ी उमंग से पति देव की राह जोह रही थी। सहसा आये हुए प्रीतम को पाकर उसका हर्षातिरेक बढ़ना स्वाभाविक था। महीपाल ने बड़े प्रेम से उसे हृदय से लगाया और धीमे स्वर में कहा, प्रिये आज मुझे अपने पुरुषार्थ की परीक्षा करने जाना है। अच्छा हो कुछ समय तक तुम अपने माता पिता के पास चली जाओ। सहसा सोमश्री सिहिर उठी। उसको रोमांच हो आया। यह क्या कह रहे हैं, आप ? काँपते स्वर में उसने प्रश्न किया। प्रिये घबराओ नहीं भय की आवश्यकता नहीं। मेरे मन में स्वाभिमान जागृत हुआ है। मैं अब समर्थ हूँ। स्वयं योग्य होकर पिता के धन का उपभोग करना कुलीन संतान का कर्तव्य नहीं है। अतः मेरी इच्छा परदेश जाकर धन उपार्जन करने की है। कुछ ही दिनों में अपना स्थान निश्चित कर तुम्हें लेने आऊँगा। हे सौम्य रूपे! चन्द्रवदनी तेरा विरह अल्पकाल भी सहना मुझे दुस्साध्य है, किन्तु स्वाभिमान रक्षण भी क्षत्रिय का धर्म है तुम शान्ति से सुखपूर्वक मेरी प्रतीक्षा करते हुए अपने पिता के पास रहना।

हे नाथ! आपकी आज्ञा प्रणाम है, पति परमेश्वर होता है, उसके संकेतों पर चलना सती-साध्वी शीलवती योग्य नारी का कर्तव्य है। पति आज्ञा विमुख नारी पतिव्रत धर्म से रहित होती है परन्तु दुःख व सुख में घर व वन में सम्पति व विपत्ति में पति ही नारी का एक मात्र अवलम्बन है। पति संयोग ही नारी का हर परिस्थिति में स्वर्ग है, हे नाथ! मैं एक क्षण भी आपके बिना नहीं रह सकती। चरण स्पर्श करते हुए सोमश्री ने कहा। क्या आप नहीं जानते सुवर्ण की परीक्षा अग्नि में तपकर, वीरभट की परीक्षा संग्राम भूमि में, तुरंग की परीक्षा गमन में, नृप की न्याय में, बन्धुजनों, की विपत्ति आने पर एवं दातार की दुर्भिक्ष पड़ने पर परीक्षा होती है।उसी प्रकार नारी की परीक्षा निर्धनपने (आपत्ति काल में) में होती है। हे पतिदेव! ये मेरी परीक्षा का समय है, आप मुझे परीक्षा देने से वंचित न करें। आपकी अर्द्धांगिनी क्या परीक्षा में असफल हो सकती है ?

हे देव! जिस प्रकार चन्द्रिका चन्द्रमा का, लक्ष्मी धर्म का, छाया शरीर का, मछली जल का वियोग सहने में समर्थ नहीं उसी प्रकार पतिव्रता नारी पति वियोग सहने में कदापि समर्थ नहीं हो सकती। जो वनिता (स्त्री) पति को (स्वामी को) निर्धन व दुःखी छोड़कर स्वयं पिता के घर रह कर सुखोपभोग करे वह वेश्या के समान है। पतिव्रता ललना तो महासती सीता के समान वन-वन में भटक कर अपने को सुखी और धन्य समझती है। मुझे आपके साथ निर्जन वन भी गुलजार उपवन होगा। हे देव! मुझे मेरे कर्तव्य से च्युत क्यों करना चाहते हैं? मैं आपके धर्मानिष्ठादि कार्यों में सहयोगिनी हूँ उसी प्रकार लौकिक क्रियाओं में भी सहायिका हूँ। मैं अवश्य आपके साथ ही रहूँगी। करबद्ध, अश्रुविगलित नेत्रों से पति का मुखकमल निहारते हुए सोमश्री ने गद्‌गदवाणी में कहा। और चातक की भांति उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। महीपाल का हृदय कांप उठा। वह अपनी सच्ची सहयोगिनी पाकर फूल उठा और कुछ विचारते हुए साथ चलने की अनुमति प्रदान की।

परदेश गमनः-नाना प्रकार तरङ्गों में निमग्न महीपाल जा रहा है। न कुछ पास है न कोई साथ है। मात्र दोनों (दम्पत्ति) एक दूसरे के सहारे बढ़े चले जा रहे हैं। कहाँ जाना है, किधर पहुँचना है, क्या करना है? कुछ पता नहीं, बस चलना ही है। न भूख की चिन्ता, न प्यास का विचार, न सम्मान की भूख, हाँ धर्म की पिपासा अवश्य है। मनुष्य जन्म की अमूल्य निधि व्रत, शील, संयम की अवश्य उन्हें चिन्ता है। बे रोक-टोक वे दोनों ही कुछ दिनों में भृगुकच्छपुर में पहुँचे।

कई दिनों की थकान थी, आँखों में नींद घुली हुई थी। कुछ समय विश्राम किया। सरोवर का शीतल जल पिया। अनन्तर अत्यन्त भक्ति से णमोकार महामंत्र का जाप कर हृदय में जिनेन्द्र प्रभु का ध्यान करते हुए पुर प्रवेश किया।

शुभोदय से उसी दिन सागरदत्त श्रेष्ठी अनेकों व्यापारियों के साथ व्यापार के लिए जा रहे थे। कुमार ने देखा और विचार करने लगा, पराई चाकरी अधमवृत्ति है। पिता की सेवावृत्ति भी धोखा दे तो फिर दूसरों के आश्रय रहने में कहाँ सुख मिल सकता है? कृषि कर्म भी मध्यम श्रेणी में है। किन्तु व्यापार करना वाणिज्य वृत्ति महा उत्तम है। अतः इससे अपना काम बनाना चाहिए। अब अन्य द्वीप में जाकर व्यापार करना चाहिए। सर्व कार्य साधक सिद्धों को नमस्कार कर पंचपरमेष्ठी का ध्यान करता हुआ निर्मल हृदय कुमार महीपाल सागरदत्त सेठ के पास गया। नम्रतापूर्वक उससे जाने का कारण व स्थान का नाम पूछा। अत्यन्त सौम्य, सरल स्वभावी, सुन्दर, बुद्धिमान कुमार को देखकर सेठ का हृदय कमल विकसित हो उठा। अनायास हर्ष की लहर दौड़ पड़ी। अति स्नेह से सेठ ने कहा, मित्रवर ! मैं यहाँ का सागरदत्त नामका श्रेष्ठी हूँ और कटाह द्वीप व्यापार के लिए जा रहा हूँ "बड़ी खुशी की बात है यदि आपको किसी प्रकार का कष्ट या असुविधा न हो तो मैं भी सपत्नीक आपके साथ जाना चाहता हूँ।" अति विनम्र किन्तु स्वाभिमान पूर्वक कुमार ने पूछा। सागरदत्त तो देखते ही उसके गुणों पर मुग्ध हो चुका था। उसके वचन सुनकर परमहर्ष के साथ चलने की अनुमति प्रदान कर दी। उसी क्षण कुमार महासति सोमश्री भार्या सहित जहाज पर आरुढ़ हो गया सेठ ने शुभ मुर्हूत पर उत्साह सहित प्रस्थान किया, जहाज चलने लगा।

हैं ! यह क्या हुआ?

जहाज के ऊपरी भाग में सुसज्जित स्थान पर बैठा महीपाल नाना प्रकार के कोतूहलों से प्रिया का मनोरंजन करते हुए विविध प्रकार की क्रीड़ा करने लगा। कभी समुद्र की उत्ताल तरंगों की गणना करने की चेष्टा करता तो कभी कई एक भवनों की रमणीयता को निरखता है। कोई जल को माप रहा है, कोई ध्रवुतारा अवलोकन कर रहा हैं, कोई वर्त को चला

रहा है, कोई जहाज में प्रविष्ट जल को बाहर फेंक रहा हैं, कोई आकाश की निर्मल भित्ति पर बने अनोखे मेघ चित्रों का निरीक्षण कर रहा है। इस प्रकार महीपाल अपनी प्रिया को नाना चित्र दिखा रहा है। पवन अनुकूल वह रही थी। अतः थोड़े ही दिनों में जहाज कटाह द्वीप के समीप जा पहुँचा। किन्तु अरे! यह क्या हो गया? कोई चोर जहाज में घुस आया देखते-देखते वह मस्तूल पर चढ़ गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। उसने बड़े प्रयत्न से गगनचुम्बी मस्तूल पर चढ़ चिल्ली निकाल दी। जहाज में जल प्रवेश होने लगा, तरंगों के बीच जहाज ऊब-चूब करने लगा। संकट काल देख सभी व्यापारीगण अपने-अपने इष्ट देवों का स्मरण करने लगे। कोई श्री परम वीतराग अरहंत परमेष्ठी का नामोच्चारण करने लगा तो कोई अपनी-अपनी कुल देवियों के आह्वान में जुट गया। कई मित्रजनों का स्मरण करने लगे। कुछ भाई बन्धु कुटुम्बियों को याद कर हाय-हाय करने लगे। कुछ ही क्षणों में उस दुर्जन ने जहाज की अन्तःसंधियों का भेदन कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। जैसे कोई विश्वास घाती मित्र एकांत की रहस्य घटनाओं को प्रकट कर देता है। सब ही व्याकुल थे अवसर पाकर जहाज के खण्डों को ले लेकर नर-नारियाँ तैरने लगे। मरता क्या नहीं करता? सभी को प्राणों की चिन्ता थी। यत्र-तत्र दिशाओं में भटकने लगे। जीवित आशा विहीन सागर की उत्ताल तरंगों के साथ युद्ध करने लगे। कर्म की गति बड़ी विचित्र है। पुण्य-पाप का खेल बड़ा अनोखा है।

राजकुमार महीपाल पंचपरमेष्ठी का ध्यान करता हुआ एक फलक (काठ) का सहारा ले पांच दिन के बाद सागर के पार आया। उस समय उसका हाल बेहाल था। भूख से पीड़ित, पिपासा से शुष्क कण्ठ, वस्त्र विहीन, एकाकी, निस्सहाय अत्यन्त श्रमित् (थका) किसी प्रकार प्राणों का रक्षण कर रहा था। उसका धैर्य मन्द नहीं था। मस्तिष्क कुण्ठित नहीं था भय का लेश भी नहीं था। उसने विचारा यह सब दुर्दैव की लीला है। वह मन में सोचता है। मन में क्या सोचता है? अहो दैव! तू बड़ा निर्दयी है,

पिता से तिरस्कृत कराया, बन्धु-बान्धव का वियोग कराया, परदेश गमन कराया और अब एक मात्र प्रिया से विछोहा कराकर यहाँ ला पटका। जो भी हो मैं डरूँगा नहीं। तू जो जो करेगा सब सहूँगा। इस समय मेरा भाग्य प्रतिकूल है जो भी उपाय करता हूँ यह विफल कर देता है। जो हो मुझे पुरुषार्थ करना ही चाहिए। व्यर्थ उहापोह करने से क्या प्रयोजन? पुरुष को पुरुषार्थ उद्योग में संलग्न रहना चाहिए। भाग्य को मेटा नहीं जा सकता परास्त किया जा सकता है। दैव की शक्ति कम नहीं। कवीश्वर भी इसका वर्णन नहीं कर सकते हैं, जिसे स्वप्न में भी न जाना जाये उसे दैव क्षणभर में ला उपस्थित कर देता है।

महीपाल का तत्वचिन्तन

एकाकी कुमार तीर पर बैठा। वायु के शीतल झोकों से कुछ शांति मिली क्षणभर विचार कर आगम चिन्तन में लगा यह सब मेरे पूर्वार्जित कर्मों का फल है मैंने पूर्वजन्म में अखण्ड पुण्योपार्जन नहीं किया था इसी से यह संकट आ गया। कई बार मैंने श्री गुरुओं-निर्ग्रन्थ मुनिराजों के मुखारबिन्द से सुना कि पुण्य पाप का फल जीव को भोगना पड़ता है। उन्होंने कथा भी सुनाई थी कि-

सिंहपुर नाम का नगर था। जहाँ करोड़ों दीनारों का अधिपति सेठ देवद्वार रहता था उसे राज्य सम्मान व लोक सम्मान भी प्राप्त था। किन्तु अभिमान उसे छू भी नहीं गया था। दानियों में दानी था। हजारों विशाल जिनभवन निर्माण कराये थे। जिनमें अनेक सुवर्ण चाँदी आदि के जिनबिम्ब प्रतिष्ठायें कराई। चतुर्विध संघ (मुनि, अर्जिका, श्रावक और श्राविका) मुनि, ऋषि, यति, अनगार ये भी चतुर्विध संघ कहलाता है इन्हें सतत् आहार दान देता था। साधु संघ आचार्य संघों को लेकर तीर्थयात्रा को जाता। फलतः उस देवद्वार सेठ के घर चन्द्रमा की कला के समान लक्ष्मी बढ़ने लगी। सुख में निमग्न वह सेठ हजारों वर्षों के काल को एक दिन

समान गिनता समय यापन करने लगा। भाग्य की विडम्बना पुण्य के क्षय होने से सब अनुकूल भी प्रतिकूल हो जाते हैं समय एकसा नहीं रहता, कहा भी है-

"सदा न फूलै केतकी सदा न सावन होय।
सदा न सुखिया सुख रहे सदा न जीवे कोय॥"

भाग्य ने करवट बदली पुण्य क्षीण हुआ, देखते ही देखते लक्ष्मी विलीन हो गई, जैसे मेघ की काली घटा वायु के झकोरे से विलीन हो जाती है। सेठ विचार निमग्न हो गया अचानक क्या हुआ? क्यों हुआ? क्या क्या करना चाहिए? उदर पूरण किस प्रकार होगा? कहाँ जाऊँ इत्यादि प्रश्न एक साथ मस्तिष्क में गीले इंधन की धुँआ के समान घुमड़ने लगे। संभवतः आपको भी उत्सुकता होगी कि आखिर क्या हुआ? "यदि है तो लो पाठकगण वह भी कारण सुन लो" जितने जहाज जलधि पर तैर रहे थे। वे तो सागर की उत्ताल तरगों में उलझ कर रत्नाकर में समा गये। बाजार में बिखरी सम्पत्ति अग्नि देवता की आहुति बन गये, अर्थात् भंयकर अग्निकांड में जलकर भस्म हो गई। महलों का वैभव तस्करों (चोरों) की भेंट हो गया। भूमि में गड़े धन के मालिक व्यन्तर देव हो गये। इस प्रकार चारों ओर से दुर्भाग्य ने किलाबन्दी कर ऐश्वर्य जप्त कर लिया। बेचारा देवद्वार सेठ परेशान हो गया और राजा के पास गया, "तीसरे साल आपका धन डेढ़ गुना करके दे दूँगा।"इस शर्त पर एकलक्ष दनीनार ले आया। धान्य खरीदा। उदर भरा। समय की गति तो अजब है। पलक झपकते ही तीसरा वर्ष आ गया। वाह रे भाग्य "पड़े पर दो लात लगाई" वाला हिसाब हुआ। भंयकर दुर्भिक्ष पड़ा। धान्य मंहगा हो गया तेजी की तीक्ष्ण धारा से निरपराध दीन गरीब जन छिन्न-भिन्न आतुर हो उठे। देवद्वार सेठ भी राजा को उचित समय पर दीनार नहीं दे सका। फलतः राजा ने उसे बन्दीगृह में डाल दिया। अन्य कुटुम्बीजन राजभय से इधर-उधर भाग गये। सत्य है-

किसी ने कहा है–

सुख के सब लोग संगाती हैं
दुख में कोई काम न आता है
जो सम्पत्ति में आ प्यार करे
वह विपद में आँख दिखाता है।

अर्थात् पुण्य के उदय से पराये भी अपने हो जाते हैं, स्वजन बन्धु-बान्धव की क्या बात? परन्तु पुण्य क्षय होने पर आपदा के समय कोई भी भाई,बन्धु कुटुम्ब, परिवार सहायक नहीं होते हैं। अपितु उलटा "जले पर नमक छिड़कना" कहावत को सार्थक बनाते हैं।

श्री पंचपरमेष्ठी के मंत्र का चमत्कार

बेड़ियों से जकड़ा, कारागार में बन्द क्षुधा तृषा से पीड़ित देवद्वार सेठ के समक्ष संसार की स्वार्थ वृत्ति प्रकट हो रही थी संसार की असारता, पुण्य की क्षणभंगुरता, बन्धुबान्धवों का थोथा स्नेह उसके हृदय में टीस पैदा कर रहा था। वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किससे अपनी मुक्ति का उपाय पूछूँ? इत्यादि प्रश्न मस्तिष्क में घूम रहे थे। उसका विवेक जागा। अन्तर्ज्योति ने मार्ग दर्शाया। वह उछल पड़ा। नाचने लगा। ठीक ही है दुःख की निवृत्ति ही तो हर्ष है- आनन्द है। वह उठा ऊपर की ओर देखा। मस्तक झुकाया। सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार किया। ठीक है महामंत्र णमोकार ही एक मात्र मेरा अवलम्ब है। इस अनादि मूलमंत्र की अपार शक्ति है। श्री मदाचार्य उमास्वामी जी ने कहा–

विश्लियन् घनकर्मराशिमशनिः संसार भूमिभृतः।
स्वर्निर्वाणपुर प्रवेश गमने निः प्रत्यवायः सतां॥
मोहान्धाटवसंकटे निपततां हस्तावलम्बोर्हतां।
पायान्नः सचराचरस्य जगतः संजीवनं मंत्रराड्॥

अर्थात् अनादि से संचित कर्मराशि से पीड़ित भव्यजीवों के कर्मसमूहों को विध्वंश करने के लिए यह नमस्कार मंत्र वज्र समान है, मोक्षभिलाषी तपस्वीजनों को स्वर्ग मोक्ष नगर में ले जाने वाला निर्द्वद सफल पाथेय है। मोह तिमिर से व्याप्त संसार अटवी में पड़े संकटों से व्यथित जीवों को हस्तावलम्बन है यह मंत्रराजसंजीवनी बूटी है। जिसके सेवन से जन्म-मरण की भंयकर व्याधि नष्ट हो जाती है। हे मंत्रराज आप ही मेरे रक्षक हैं। आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ। क्योंकि आचार्य देव कहते हैं–

यो लक्षं जिन लक्ष बद्धहृदयः सुव्यक्तवर्णक्रमम।
श्रद्धावान्विजितेन्द्रियो भव हरं मंत्रं जपेच्छावकः॥
पुष्पैः श्वेत सुगंधिभिः सुविधिना लक्ष प्रमाणैरमुं।
यः संपूजयते स विश्व महितस्तीर्थाधिनाथो भवेत्॥

अर्थ-श्रद्धायुक्त जितेन्द्रिय-इन्द्रिय विषयों पर विजय कर शुद्ध मन से जो भव्यात्मा इस मंत्र का शुद्ध व स्पष्ट उच्चारण करता है। जिनेन्द्र प्रभु के चरणों में रक्तलीन हृदय होकर सुगन्धित सफेद पुष्पों से एकाग्रचित एक लक्ष जाप करता है वह भव्य सर्वोत्तम तीर्थङ्कर पदधारी होकर मुक्तिरमा का वरण करता है। श्रेष्ठ विधि से मुझे भी यही करना चाहिए। क्योंकि इसके जाप से अगाध सागर का, मदोन्मत्त गजराज, सिंह असाध्य रोग, अग्निभय, शत्रुभय, चोरग्रह, चित्त विभ्रम, पिशाचराक्षस, भूत, डाकिनी, शाकिनी इत्यादि का भय क्षण मात्र में नष्ट हो जाता है। इसलिए त्रिकरण-मन, वचन और काय शुद्ध कर एकाग्रचित से महामंत्र का जप करूँ इससे बढ़कर तीन लोक में दूसरा मंत्र नहीं है।

इस प्रकार दृढ़ श्रद्धा की। तीनों योगों को शुद्ध कर जिनेन्द्र प्रभु का ध्यान करते हुए पंचपरमेष्ठी का स्मरण पूर्वक सेठ ने एक लक्ष नवकार महामंत्र का जाप किया। मंत्र प्रभाव से उसके जटिल बन्धन तड़-तड़ टूट गये ताला खुल गया, द्वारपालों को अकाल निद्रा ने दबा लिया। स्वमेव द्वार खुल गये। वह देवद्वार कारागार से निकल गया। वाह रे मंत्रराज तेरा

मंगलमय आह्वान कर्म कंलक का नाश करने में समर्थ है। फिर बेड़ियाँ कट जाना, द्वार खुल जाना, क्या बड़ी बात है? यह मंत्रराज परमपूज्य है। स्मरणीय हैं। उभयलोक की शान्ति का आधार है। इसका ध्यान आत्म सिद्धि का साधन है, स्वर्ग का सोपान है और लौकिक जीवन में सुख-शान्ति का निर्मल सुधास्त्रोत है। यह मधुर मिसरी का डला है। जिसे जब खाओं तब , जिधर से खाओं उधर से हर हालत में मिठास ही प्रदान करता है। अतः प्रतिक्षण मंत्रराज का जाप करते रहना चाहिए।

धर्मोपदेश लाभ-देवद्वार सेठ चला जा रहा था। प्राण बचे लाखों पाये। भय मिश्रित हर्ष से व्याप्त चित्त वह भागता हुआ महान अटवी में पहुँचा। पर्याप्त थक चुका था किन्तु हलकी सी चिन्ता हुई विलीन हो गई तत्क्षण अरहन्त के पुण्य परमाणुओं का सानिध्य पाकर भयानक अटवी सुरभय उपवन सी शोभित हो रही थी मन्द सुगन्ध पवन के झोकों ने उसके श्रम सीकरों को सुखा दिया। शीतल वायु ने सूखे कण्ठ में मानों अमृत डाल दिया। उसका भय आश्चर्य में बदलने लगा। अचानक उसे बहुत विशाल सभा मण्डप दिखाई दिया। यह तो समवसरण है, हर्षोत्फुल्ल हो दौड़ा और सीधा पहुँच गया श्री मंडप (गंधकुटी) में जहाँ केवली भगवान् रत्न जड़ित सुवर्ण सिंहासन पर अंतरिक्ष (चार अंगुल अधर) में विराजमान थे। भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। मनुष्यों के कोठे में बैठ गया। द्विविध धर्म का यथावत् स्वरूप सुना। अवसर पाकर हाथ जोड़कर नमस्कार कर श्री केवलीप्रभु से प्रार्थना की हे त्रिलोक्याधिपती प्रभो! मैंने पूर्व भव में ऐसा कौन सा शुभाशुभा कर्म बंध किया कि जिसके फलस्वरूप यहाँ मुझे सुखी दुःखी होना पड़ा? करुणासागर प्रभु कहने लगे। हे भव्यात्मन् तू पूर्व भव में वणिक-बनिकों का सुत था। धर्म-ध्यान और दानपूजा में सदा तत्पर रहता था। पुण्यवान होने पर भी बीच में असाता का उदय आने से शरीर में असाध्य पीड़ा हो गई। अनेक मंत्र तंत्र यंत्र प्रयोग किये औषधादि का भी प्रयोग किया परन्तु किसी प्रकार की शान्ति

नहीं मिली। शरीर सूखकर कांटा हो गया। उसका धैर्य टूट गया। श्रद्धा हिल उठी। मन विचलित हो उठा। वह विचार करने लगा, मैंने निरंतर धर्म सेवन किया और अब भी धर्म सेवन में लीन हूँ, परंतु पीड़ा तनिक भी शांत नहीं हुई। क्या धर्म फल मिथ्या है? मुझे तो यही भसता है कि धर्म की चर्चा व्यर्थ है धर्म करके ही मेरी यह दुर्दशा हुई है अब भविष्य में धर्मानुष्ठानादि नहीं करुँगा। ठीक ही है कामला रोगी (पीलिया) को शुभ्र सफेद शंख भी पीला दीखाई देता है। मिथ्यात्व के उदय से वणिक पुत्र को धर्म फल दिखलाई पड़ने लगा। भ्रम बुद्धि से जीव-जन्तु वस्तु स्वरुप को भूल जाता है। कुत्ता का स्वभाव लाठी मारने वाले को काटने का नहीं अपुति लकड़ी पर झपटने का है। उसी प्रकार अज्ञानतम से पीड़ित उसने पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म की ओर तो दृष्टि नहीं डाली वर्तमान में संचित पुण्यराशि को कोसने लगा। हाय-हाय कर आर्त परिणामों से कुमरण किया और सज्जन वणिक पुत्र मरकर तू इसी सिंहपुर में (देवद्वार) सेठ हुआ है। प्रथम पुण्योपार्जन किया था इससे तो धन सम्पदा वैभव प्राप्त हुआ और असाता के उदय में अज्ञानवश धर्म की निन्दाओं अशुभभावों के कारण तुझे दुर्निवार विपत्ति का सामना करना पड़ा। हे वत्स! यदि धर्म की निन्दा अनिवय नहीं करते तो आपदा नहीं आती निज अपराध से जीव को दारिद्रयादि का कष्ट उठाना पड़ता है। अखण्ड धर्म सेवन से अखण्ड सुख प्राप्त होता है। वीतराग वाणी के प्रभाव से देवद्वार सेठ का हृदय काँप उठा। संसार भय से भयभीत हो निजानुभूति की ओर बढ़ा। बस क्या था जातिस्मरण हो गया। वैराग्य आ गया। नश्वर संसार की विडम्बना उसके सामने नाचने लगी। संसार शरीर भोगों से विरक्त हो जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। कठोर तपश्चरण की अग्नि में आत्मा को तपाकर कु न्दन बनाया। ध्यानाग्नि से कर्म कलंक का मूलोच्छेद कर कैवल्य प्राप्त किया और कुछ ही समय में अविनश्वर मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार महीपाल राजा आगम वाक्यों का स्मरण करने लगा। हाय-हाय मैंने भी देवद्वार की भाँति अखण्ड पुण्योपार्जन नहीं किया जिनेन्द्र प्रभु की

निरंतराय उपासना नहीं करने से ही यह पाप उदय आया है। माता-पिता का वियोग धन सम्पत्ति का वियोग और सर्वोपरि यह कि परदेश में प्राण प्रिया का वियोग हो गया। जिनशासन का यही सार है अपने अपने शुभाशुभ कर्मानुसार जीव को सुख दुख भोगना ही पड़ता है। अमित गति स्वामी ने कहा हैं–

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किंचन्।
विचार यन्नेव मनन्य मानसः परोददातीति विमुच्य शेमुशीम्॥

अपना किया कर्म फल देकर ही छूटेगा। हाय हाय अब मेरें तीव्र असाता उदय में आया है। कुटुम्ब परिवार धन सम्पत्ति तो पुनः मिल सकती है परंतु मेरी प्राण प्रिया का मिलना असंभव हैं जो भी हो। अब मुझे सावधान होना चाहिए। तकदीर के साथ तदवीर जोड़ देने से उसका बोलबाला ठंडा पड़ जाता है चलूं कोई उपाय करूँ। वह विचार सागर में निमग्न हो, धीरे-धीरे चला। हृदय में पंचपरमेष्टी का ध्यान करता हुआ एक कमलों से व्याप्त शीतल जलपूर्ण सरोवर पर पहुँचा। प्रसन्न होकर स्नानादि कर निर्मल जल स्वच्छ दुपट्टे (कपड़े) से छानकर पिया। आगे कौन सा नगर है? यह कौन सा द्वीप है? इत्यादि विचार करते हुए सरोवर तट पर विश्राम करने लगा।

"इति नंदि मुनिराज के शिष्य चारित्रभूषण द्वारा रचित
महीपाल चरित्र में प्रथम संधि समाप्तम॥"

अथ द्वितीय सन्धि

महीपाल शीतल वायु के स्पर्श से शान्ति का अनुभव करने लगा। इसी समय एक सुन्दर सुसज्जित वेषभूषा धारी महात्मा पुरुष आया। उससे पूछने पर उसने कहा कि वह कटाह द्वीप है। और रत्नपुर नगर है। बैरोसिंह नृपति है। वस्तुतः शत्रु रूपी हरिणों को वह सिंह समान पराक्रमी है। महीपाल ने शुभ शकुनों के साथ नग में प्रवेश किया।

शुभचिन्हों से उसे विश्वास हुआ कि अवश्य यहाँ मुझे विशेष लाभ होगा। नगरी की सुषमा निराली थी। भवनों की छटा कलाकारों का यशगान कर रही थी। बाजार में लगी रत्नराशि वहाँ के राजा का ऐश्वर्य प्रदर्शित कर रहीं थी। व्यापारियों की चहल-पहल और धूम-धाम वहाँ के व्यापारी का परिचाय दे रही थी। महीपाल आश्वस्त हो एक सागर नामक श्रेष्ठी की दुकान पर बैठ गया। उसी समय एक व्यापारी ने ५००-५०० रुपये के मोती दिखाये महीपाल ताड़ गया। सेठ से कहा यह मोती वेश कीमती हैं। आप ले लें। परन्तु सेठ को परदेशी की बात पर विश्वास नहीं हुआ।

बुद्धि का वैभव- व्यापारी चल पड़ा। महीपाल को ठेस लगी। इतना सस्ता माल उपेक्षा कैसे करें? उसे बुलाया। मोल पक्का कर रत्न ले लिये। कुछ दूर जाकर अन्य जौहरी के यहाँ उन्हें एक-एक हजार में बेच दिया। ५०० रु. प्रति मोती के हिसाब से उसने व्यापारी को मूल्य चुका दिया बाकी रुपये सागर सेठ को दिखलाए सेठ को बड़ा विस्मय हुआ। उसने महीपाल का सम्मान कर अपने यहाँ रहने की प्रार्थना की। आश्चर्य से भरे सेठ ने विनम्रता से उसका नाम, गाँव, आने का कारण पूछा। कुमार ने भी अपना उद्देश्य सिद्ध होता जान आद्योपान्त सारा वृतान्त यथावत् बतलाया। सेठ ने स्नेह से अपनी दुकान पर स्थान दिया। सेठ की आज्ञा प्रमाण महीपाल व्यापार करने लगा। सागर सेठ की एक मास की कमाई कुमार की कुशलता से एक दिन में ही आने लगी। संसार की कहावत है—"कामला सो लाडला" अर्थात् कर्मठ व्यक्ति सर्वजन प्रिय हो जाता है। सागर सेठ पुत्र से भी अधिक उसका आदर सम्मान करने लगा। नीति है कि "विद्वान पंडित, रूपवती नारी, पराक्रमी सुभट, मोती-मणि और गुणी कलावान पुरुष संसार में जहाँ जाता है वहीं आदर और यश सुयश प्राप्त करता है। महीपाल का यश चारों और फैलने लाग।

एक दिन राजा ने समस्त जौहरियों (रत्न पारखियों) को बुलाया। महीपाल कुमार भी सागर सेठ की आज्ञानुसार राजसभा में उपस्थित

हुआ। सभी सेठों ने यथायोग्य राजा को नमस्कार किया। अपने अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये। रत्नपारखी कलाकार महीपाल भी महामंत्र का जाप करता हुआ बैठ गया।

राज सभा भरी है। राजा सिंहासन पर आसीन हैं। व्यापारी भाई अपने बेचने वाले रत्नों सहित उपस्थित हैं। नृपति ने उनके द्वारा लाये तीन रत्नों को थाल में देते हुए कहा, अय वणिक गण हो! ये रत्न मैं लेना चाहता हूँ। आप लोग इनकी परीक्षा कर योग्य मूल्य निर्धारित करो। बैरीसिंह भूपाल की आज्ञानुसार सर्वश्रेष्ठी गणों ने रत्नों की कांति आकार, रूप, हलका, भारी आदि गुणों की परीक्षा की और पृथ्वीपति से बोले, हे राजन्! यह एक दाना १०० (एक सौ) रुपये का है, एक दूसरा दाना (मोती) ५० रुपये का मूल्य वाला है। और यह तीसरा कांतिहीन रत्न कोई मूल्य नहीं रखता। महीपाल कुमार यह सब सुनता रहा। परन्तु उनके विपरीत कथन को सह नहीं सका। एकाएक बिना पूछे बोलना भी उचित नहीं, सोचकर माथा हिलाया। हाथ से धुना और नीचे भूमि को देखने लगा। राजा उसकी चेष्टा ताड़ गये। अवश्य ही कोई विशेष कारण है। यह कुमार भी विशेषज्ञ प्रतीत होता है। इसका परिचय अवश्य पूछना चाहिए। उसी समय राजा का अभिप्राय जानकर सागर सेठ ने कहा, राजन् यह विशेष कलाकार मोतियों का चतुर पारखी है। यह श्रवण कर राजा ने सभा विसर्जन कर कुमार को अपने पास बुलाकर सिर धुनने का कारण पूछा।

महीपाल ने नम्रता से उत्तर दिया, इतने बड़े-बड़े गुणज्ञ सेठों के समक्ष मेरी क्या योग्यता है। आप कोई सेवा हो तो कहिए। पुनः राजा ने आग्रह पूर्वक उस कुमार से अधोमुख करने का कारण पूछा। कुमार ने विनय पूर्वक उत्तर दिया राजन् सभी सेठों ने मोतीयों का विपरीत मूल्य एवं गुण बतलाया है। जिस मोती को मूल्यहीन कान्तिहीन कहा है उसका मूल्य एक लक्ष दीनार है। कारण इसके रखने पर किसी प्रकार की कोई ईति, भीति, शाकिनी, डाकिनी, भूत, पिशाच, राक्षस आदि का भय नहीं

रहता है। किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं आता है। परीक्षार्थ आप एक थाल भरकर चावल मंगाइये। तदनुसार करने पर उसके बीच में वह मोती रख दिया । देखते देखते बहुत से पक्षी आये किन्तु उस मोती के प्रभाव से कोई भी उस थाल के पास नहीं आ सका। उड़ गये। राजा को विश्वास हो गया वास्तव में यह मोती वेश कीमती है। निरर्थक मोती का यह प्रभाव देखकर भूपति बहुत प्रसन्न हुआ और उस मोती को थाल से उठा लिया। तब क्षण भर में सैंकड़ों पक्षी आ गये। जब तक थाल में मोती रहा सभी मंत्रबद्ध से दूर रहे। मोती का प्रत्यक्ष चमत्कार देखकर हर्षित और आश्चर्यान्वित भूपाल ने अन्य मोतियों की परीक्षा के लिए आदेश दिया। तब महीपाल ने दूसरा मोती जिसका १०० दीनार बतलाया था कहा कि यह एक कौड़ी का भी नहीं है। हे राजन्! इस माती का नाम गर्भनीर है। जिस समय सींप ने समुद्र का खारा जलपान किया उसके दूसरे ही क्षण स्वाति नक्षत्र का जल भी पी लिया। उसी मिश्रण से यह मोती पैदा हुआ है इसलिए इसकी गंर्भनीर संज्ञा है अतः इसका कोई मूल्य नहीं।

तीसरा मोती जिसका मूल्य ५० रुपये कहा था, सो यह भी निरर्थक है, इसका कुछ भी मूल्य नहीं है। कारण कि इस मोती के गर्भकाल में लघु, उर्द्धता के दोष से यह मोती स्वामी को भय और हानि करने वाला है। देखिये इस मोती की उत्पत्ति बतलाता हूँ। यह ताम्रपर्णा नदी में हुआ है। ताम्रपर्णा के पंक मिश्रित जल को सीप ने पी लिया पुनः स्वाति नक्षत्र का जलपान किया। उस कीचड़ मिले पानी से पेट में मेंढकी उत्पन्न हो गई। वह मेंढकी आज भी इस मोती के अन्दर है। राजा ने उसी क्षण मोती को तुड़वाकर प्रत्यक्ष उस मेंढकी को देखा। उसे आश्चर्य के साथ महीपाल की तीक्ष्ण पारखी बुद्धि को जानकर अत्यानन्दित हुआ। प्रसन्न होकर राजा ने उसे नाना वस्त्रांलंकार पहनाकर सम्मानित किया। समस्त जौहरियों को बुलाकर उसकी बुद्धि कौशल का प्रदर्शन किया। कहा, देखो, समुद्र के अथाह जल की भी सीमा है, लाखों योजन विस्तार वाला

होने पर भी सागर असीम नहीं है। आकाशगामी मार्तण्ड का भी क्षेत्र (गमन क्षेत्र) सीमित है अन्य आश्चर्य-कारक वस्तुऐं हैं परन्तु सत्पुरुषों के ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। यह तो सर्वोत्कृष्ट सर्वोपरि विराजमान रहता है। राजा द्वारा अतिसम्मान पाने पर भी कुमार को तनिक भी अहंभाव (घमण्ड) नहीं हुआ। विनय से नम्रीभूत सागर सेठ के यहाँ न्यायोचित व्यापार कर अपना उज्जवल यश बिखेरने लगा।

वैरीसिंह-पृथ्वीपति के अथर्णव एवं गुणधवल नामके दो मंत्री थे। वह गुणधवल यथार्थ में गुण, रूप सौन्दर्य से भी धवल था। उसकी प्राण प्रिया का नाम गुणश्री थी। गुणश्री न्यायोचित उत्तम गुणों से सज्जित और परम लावण्य से मण्डित थी। वह शील शिरोमणि पतिव्रता धर्मयुक्त सती शिरोमणी थी। किसी समय बसन्त ऋतु का आगमन होने से वह वन बिहार के लिये गई साथ में अनेक दासियाँ थी। क्रीड़ा करती हुई दैवयोग से उसने एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर में प्रवेश किया। यह मिथ्यादृष्टि किसी यक्ष का भवन था। गुणश्री को देखते ही यक्ष कामवासना से विद्ध हो गया। काम विह्वल यक्ष गुणश्री को बलात् कर (हाथ) ग्रहण कर कहने लगा, अहो! सुन्दरी। आपका भव्य रूप देखकर मेरे नेत्र आज सफल हो गये। मैं धन्य हो गया। परन्तु कामदेव की पीड़ा से मन अधीर होता जा रहा है। मेरी कामबाधा से उत्पन्न दाह की शान्ति तेरे शरीर के स्पर्शमात्र से होगी। यही औषधि है। हे सौम्यवदनी अहोरम्य जंघा धारिणी ये बहुमूल्य आभूषण तू ग्रहण कर और मुझे मधुर वचन प्रदान कर। तेरे शरीर संभोग से मेरा काम संताप शीघ्र शांत हो जायेगा। कुचेष्टा भरा हास्य करता हुआ यक्ष आगे बढ़ा। गुणश्री ने फटकार लगाई, बोली, रे दुष्ट पाजी संसार में कौन ऐसा दुष्ट, नीच, पापी, देव, दानव, मनुष्यादि है जो सतियों के शील को स्पर्श करे। फिर तू तो देव है तेरे वैक्रियक शरीर है। देव दानव औदारिक धारी स्त्रियों के सेवन की अभिलाषा नहीं करते हैं। तू लम्पटी, पापी, अधम है जो ऐसी पापमय बातें कर रहा है।

विषयासक्त यक्ष का विवेक नष्ट हो गया, बुद्धिभ्रष्ट हो गई। विषयान्ध बोला हे, भामिनी ! तू सम्पूर्ण विकल्प जाल छोड़ और रतिदान प्रदान कर मुझे कृतार्थ कर।

सच है नीतिकार कहते हैं–

"विषयासक्त चित्तानां गुण को वा न नश्यति।
न वैदूष्यं न पण्डित्यं, न नाभिजात्यं न सत्यवाक्॥"

अर्थात् विषय भोगों में अतिग्रद्धता रखने से महा श्रेष्ठ उत्तम गुण भी नष्ट ही जाते हैं। विद्वत्ता, कुशलता, धर्मज्ञता, सत्य भाषण आदि प्रमुख सुगुण विपरीत हो जाते हैं। या नष्ट हो जाते है। अवधिज्ञानी (विभगावधि ज्ञानी) होते हुए भी यक्ष विषयान्ध हो सामान्य स्त्री पर मुग्ध हो गया।

गुणश्री शेरनी की भांति गर्जी रे अधम यक्ष दूर रह, क्या तू नहीं जानता कि सती साध्वी स्त्री के लिए एक पति के अतिरिक्त इन्द्र, धरणेन्द्र, असुरेन्द्र, नरेन्द्र (चक्रवर्ती) आदि सभी त्याज्य हैं। इनमें किसका साहस है जो अखण्ड शीलवती का व्रत खण्डन कर सके। अरे पापी याद रख,कदाचित सूर्योदय पश्चिम में होने लगे, रत्नाकर अपनी सीमा छोड़ दे, अग्नि शीतल हो जावे परन्तु पतिव्रता नारी कदाऽपि अपने पतिव्रत धर्म से च्युत नहीं हो सकती है। तू कायर है, दुष्ट है। अरे लम्पटी तुझे लज्जा भी नहीं आती ? इतना कहने पर भी उस दुष्ट यक्ष ने छोड़ना नहीं चाहा। तब गुणश्री कुपित हो बोली रे दुरात्मन् ठहर अभी सतीत्व के बल से तुझे भस्म करती हूँ। देखती हूँ तू कहाँ जायेगा ? खड़ा रह, पापात्मन् देख मेरी शाप शक्ति। सतियों के सतीत्व में अपरिमित शक्ति विद्यमान रहती है। उसके सामने सुरेन्द्र, धरणेन्द्र, नागेन्द्र आदि कोई भी टिक नहीं सकता। कांपते हुए यक्ष ने गुणश्री उसी को समय छोड़ दिया। परन्तु अन्तरङ्ग वासना शांत नहीं हुई।

गुणश्री विजयी हो अपने घर गई। शील मात्र ही नारी का जीवन है, ऐसा विचार कर शान्ति से अपने घर आई इधर यक्ष का हृदय शान्ति नहीं पा सका। वह विद्या बल से यक्ष रूप छोड़कर, गुण धवल मंत्री का रूप धारण कर दूसरे ही दिन श्रेष्ठी के द्वार पर आया। उस समय उसने द्वारपालों से कहा कि देखो आज नगर में बहुत से धूर्त जालिया लोग आये हैं उनमें से यदि कोई मेरा जैसा रूपधारी आवे तो अन्दर नहीं आने देना। इस प्रकार उन्हें सावधान कर अन्दर गया। बड़े स्नेह से मधुर वाणी में गुणश्री को पुकारा। असमय में पति आगमन से गुणश्री विस्मय में पड़ गई। उसने विचारा यह निर्लज्जता का कार्य है जो दिन में मुझे शयनागार में बुला रहे हैं। किसी अशुभ आंशका से उसका हृदय धड़का। ज्यों त्यों गृहकार्य से निवृत हो शयनागार की ओर जाने की तैयारी हुयी कि उसी समय असली गुणधवल मंत्री द्वार पर आ पहुँचा किन्तु द्वारपाल ने अन्दर प्रवेश नहीं करने दिया। गुणधवल ने कहा अरे द्वार रक्षक आज क्या तुझे पागलपन छाया है या नशा चढ़ा है, अथवा कोई व्यन्तर तुझ में प्रविष्ट हो गया है जो मुझे नहीं पहिचानता है। मैं गुणधवल तुम्हारा स्वामी हूँ।

अरे जा-जा धूर्त! सारे नगर को ठगकर यहाँ आया है, मेरे पास तेरी ठग विद्या नहीं चल सकती है। द्वारपाल ने गरजते हुए कहा। गुणश्री हो हल्ला सुनकर चित्राम-सी खड़ी रह गयी। यह क्या अद्भूत दृश्य है। स्वप्न भ्रम अथवा सत्य नाना विचारों में पड़ गई।

मंत्री अपने ही द्वारपाल से तिरस्कृत हुआ। हाय-हाय करने लगा। उठा और सीधा राजद्वार में जा पहुँचा। अपने घर का सकल वृतान्त राजा से निवेदन कर उचित न्याय की प्रार्थना की। राजा ने कहा तुम घबराओ मत। मैं अभी उस धूर्त को बुलाकर कुछ गूढ़ प्रश्नादि कर अपनी न्यायोचित बुद्धि से सम्यक परीक्षा कर सही न्याय कर तेरा दुःख निवारण करुँगा।

राजा बैरीसिंह ने तुरन्त उस पाखण्डी को सैनिक भेजकर बुलाया। परीक्षार्थ उससे अपने गूढ़ कार्यों के विषय में पूछा। तब मायावी ने अपने अवधिज्ञान से राजा के मनोभाव को परख सही उत्तर दे दिया। इसके अतिरिक्त कई बातें राजा के बिना पूछे ही बतला दीं। राजा हैरत में पड़ गया। ये दोनों ही सच्चे प्रतीत हो रहे हैं। किसे सच्चा और किसे झूठा कहूँ। वह हैरान हो गया और उसने दूसरे दिन न्याय करने का आदेश दिया।

नगर में डोड़ी पिट रही है जो पुरुष कृत्रिम-अकृत्रिम गुणधवल की परीक्षा कर निर्णय करेगा उसे राजा बैरीसिंह एक लक्ष दीनार से सम्मानित करेंगे। चारों ओर कोलाहल मचा था। कौतुक से नर-नारी जनों की भीड़ लगी थी। परन्तु न्याय कौन करें? यह डिंडोरी की आवाज बुद्धिवैभव के धनी महीपाल जी के कानों में पड़ी। बस फिर क्या था? कुतुहली कुमार राजदरबार में उपस्थित हुआ। सभा खचाखच भरी थी। राजा सिंहासनारूढ़ था। दोनों समान रूपधारी मंत्री खड़े थे। रंग, रूप, आकार, वेशभूषा सब दोनों का समान देख कुमार ताड़ गया यह कोई प्रपंची है। महीपाल ने विनय से राजा को कहा-हे राजन् इस निर्णय में हमारे गुरुजनों का उपदेश क्रिया विधि पूर्वक, मान्य होना चाहिए। सभी की सम्मति से मैं उसका प्रयोग कर निर्णय कर सकता हूँ। समस्त सभासद एक स्वर में सम्मत हो गये। जल्दी न्याय करो। इनका कष्ट शीघ्र दूर करो। चहुँओर राजसभा गूंज उठी। राजा की अनुज्ञा पाकर महीपाल एक छोटे मुख की झारी लाया। यथाविधि पूजा की और विज्ञप्ति की कि जो इन दोनों में से इस झारी की टोंटी से घुस कर प्रमुख द्वार से निकल आयेगा वही सच्चा गुणधवल समझा जायेगा। इस विज्ञप्ति को सुन कर कृत्रिम बनावटी मंत्री हर्ष से फूला नहीं समाया, शीघ्र ही उछलता हुआ उस लघुद्वार से प्रविष्ट हो दीघ्रद्वार से निकल आया। उसी क्षण महीपाल ने उसे कसकर पकड़ लिया और राजा से कहा लीजिए यह है बनावटी धूर्त और वह है सच्चा यथार्थ

गुणधवल। सम्पूर्ण सभा दांतों तले उंगली दबा गई। यक्ष भी विस्मित हो महीपाल को नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमायाचना करता हुआ अपने स्थान को चला गया। तब राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ।

सभा को सम्बोधन कर कहने लगा, देखो इसका बुद्धि कौशल, विधाकुशलता और प्रत्युत्पन्नमति जिसके समक्ष मनुष्य क्या देव को भी झुकना पड़ा। कुमार तुम धन्य हो लो यह तुम्हारा उपहार एक लाख दीनार भेंट कर उसे हृदय से लगाया। तथा गुणधवल मंत्री से भी यथोचित सम्मान कराया मंत्री ने आदर से उसे कंठ से लगाकर कहा हे गुणशिरोमणी। आपके प्रसाद से आज मुझे खोया हुआ घर, द्वार और दारा की प्राप्ति हुई है। आप हमारे परम हितैषी मित्र हो। आपकी असीम कृपा से मुझे मेरी शीलवन्ती भार्या प्राप्त हुयी है। आप मेरे अकारण बन्धु है। इस प्रकार नाना प्रशंसा कर राजा की आज्ञा प्रमाण कर अपने घर (हवेली) को पधारा साथ में महीपाल को भी लाया। अति स्नेह दिखला कर बोला-हे सर्वोत्तम मित्र, आप मेरे हितैषी बन्धु है। यह मेरा घर सम्पति, कुटुम्ब परिवार सब आपका ही है मैं भी आप ही का हूँ। आपने अपने गुण रत्नों से मुझे खरीद लिया है। आप मेरे हितकर बन्धु हैं। मैं आपका दास हूँ। अति अनुराग से गुणधवल ने भी उसे एक लक्ष रुपये भेंट किये। सज्जनों की यही रीति है। उपकारी का उपकार अवश्य करते हैं। वनस्पतिकाय श्रीफल प्रथम थोड़ा-सा जल पीकर जीवन-पर्यन्त मस्तक पर सुमधुर जल को धारण करता है। महीपाल कुमार भी प्रसन्नचित दोनों स्थानों से प्राप्त धन को मंत्री के घर रखकर निष्कपट, सरलचित से छलोछद्रों से रहित सागर सेठ के यहां सुखपूर्वक रहने लगा। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रखर कला कौशल से राज्य का प्रत्येक सदस्य अतिप्रसन्न अनुरागी था।

चारों ओर हाहाकार मचा है। बाजार गलियां सड़कें दौड़ा-दौड़ी से व्याप्त हैं। हटो, चलो, भागो, वह आया, वह मरा, बचा, बचा, यह तो बचा, अरे मेरी लड़की को बचाओ, वह मेरा वृद्ध पिता है, कैसे बचेगा ?

यही ध्वनि आ रही थी। हां ठीक था। राजा का यह हस्ती सांकल तौड़ कर भाग निकला था। उज्जवल कान्ति से युक्त महाबलवान गुणवान चन्द्रकान्ति सदृश उज्ज्वल श्वभ्र वर्ण अन्य हाथियों से विलक्षण अचानक मदोन्मत्त हो, सांकल लौह श्रृंखलाओं को तोड़ कर भाग खड़ा हुआ। अनेक स्त्री-पुरुषों, बाल वृद्ध आदि को मारता, पछाड़ता, कुचलता, चिंघाड़ता, धूम मचाता नगर में उन्मत्त हुआ घूम रहा था। बड़े-बड़े गज कला प्रवीण पहलवान बुलाये। परन्तु सभी असफल हुए कोई भी उस गजराज को बांध नहीं सका। उस उपद्रवी ने अनेकों उत्तुंग अट्टालिकाओं को तहस-नहस कर दिया। राजा बैरीसिंह कर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसने घोषणा करादी जो व्यक्ति मेरे इस उच्छृंखल मदोन्मत्त दुष्ट गजराज का दमन करेगा उसे एक लक्ष दीनार इनाम पारितोषिक में दिया जायेगा। इस घोषणा को सुनकर कुमार घर से निकला। अति बलवान उस निरंकुश गजेन्द्र को देख निर्भयता से उसकी ओर आया। सुललित मधुर गान कर उसे चित्रामवत् खड़ा कर दिया। गान में मस्त हो गज सब मस्ती भूल गया। मंत्रबद्ध सा निश्चल खड़ा रहा। तत्काल कुमार उछलकर उसके मस्तिष्क पर आरूढ़ हुआ। अपने आधीन कर राजा के हाथी खाने में लाकर बांध दिया। राजा ने प्रसन्न हो विज्ञप्ति के अनुसार उसे एक लक्ष स्वर्ण दीनार और सुन्दर-सुन्दर वस्त्रांलकार देकर सम्मानित किया। राजकुमार यह भी मंत्री के यहाँ रखकर सागर सेठ के यहाँ आ गया।

नगर में चहुंओर महीपाल कुमार के ही गुणों की चर्चा हो रही थी। बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सभी के मुख पर एकमात्र कुमार का ही गुण कीर्तन था। यह है पुण्य का जोर। बुद्धि कौशल से क्या परे है? सबकी आंखों का तारा कुमार नक्षत्रों में चांद जैसा दैदीप्यमान होने लगा।

राज दरबार लगा है। बैरीसिंह भूपति राजसिंहासन पर आसीन है। महीपाल सहित कुछ जौहरी बहुमूल्य हीरों की जांच कर रहे थे। उसी समय राजकुमारी जिनेन्द्र प्रभु की पूजा कर आसिका (शेषाक्षत) लेकर

पिता के पास आयी। पिता ने बड़े प्रेम से उसे गोद में बैठाया। वह साक्षात् लक्ष्मी थीं, कान्ति से चन्द्रकला थी, कोमलाङ्गी योवन के प्रारम्भिक चिन्हों से युक्त थी सहसा उसकी दृष्टि सभा में उपस्थित महीपाल पर पड़ी और गई तो पुनः वापिस नहीं लौटी। मानो महीपाल के विद्यादिक गुणों में प्रवेश कर उलझ गई हो। कला, लक्ष्मी, सौन्दर्य, विद्या आदि सभी गुण सर्व में नहीं होते हैं। बिरले ही पुण्यवान सच्चरित्रों में ही होना सम्भव है। राजकुमार को सभी गुणों से समन्वित पाकर अपने को धन्य समझ रहे थे। चन्द्रलेखा कुसुम वाण से पीड़ित हो उठी। उसका सर्वांग कामाग्नि से दहक उठा। वह उठी धीरे-धीरे बार-बार पीछे मुड़कर देखती हुई किसी प्रकार राजमहल में गई। शरीर गया महल में पर मन महीपाल के पीछे छलांग मार रहा था। असाधकाम पीड़ा से संतृप्त चन्द्रलेखा ने अपनी सखी से सम्पूर्ण मनोव्यथा कही और बड़े प्रेम से उसे महीपाल कुमार के पास भेजा।

चतुर दूती अवसर पाकर एकान्त में राजकुमार से बोली, हे राजकुमार! जिस समय से मेरी स्वामिनी राजकन्या चन्द्रलेखा ने आपके गुण और रूप सम्पदा को देखा है। कामबाण से विंध हो, दुःखी हो रही है। आप कृपाकर उसे जीवनदान करें। इस समय उसे मलयागिरी चन्दन का लेप, मोतियों का हार, चन्द्र की चन्द्रिका, झरनों का निहार भी नहीं सुहाता है। कामज्वर के ताप में झुलस रही है। उसके प्राण आपके हाथ में हैं । प्रणय-दान कर उसकी रक्षा करिये। महीपाल ने मन में विचारा "मैं भी यही चाहता था।" प्रकट बोला, हे बयोहारिणी! (दासी) तुम्हारी स्वामिनी के सदृश ही मेरी अवस्था है। जिस क्षण से उस मृगनयनी, कमलवदनी को मैंने देखा है, वह तब से मेरे हृदय कंज में पराग की भांति बसी है। किन्तु सत्पुरुषों का प्रत्येक कार्य न्याय, नीति एवं विवेक पूर्ण होता है, अस्तु यदि राजा स्वयं अपनी कन्या को मुझे सहर्ष प्रदान करेंगे तो मैं अवश्य उसे प्रीति से स्वीकार करुंगा अन्यथा करना कुलवानों की परम्परा नहीं है। न्यायपूर्वक भोग भोगने से उभयकुल शोभित होते हैं।

अन्यथा अन्याय से उभयकुल कलंकित हो जाते हैं। दोनों लोक भी अन्यायी के नष्ट हो जाते हैं। इस विषय में न्यायोचित रूप से हमारे कार्य की सिद्धि हो, वही उपाय करना उचित है। तुम अपनी स्वामिनी को धैर्य बंधा कर यह संदेश सुना देना, कुमार को प्रणाम कर चेटी (दासी) ने प्रस्थान किया।

राजकन्या दिन पर दिन क्षीण होने लगी। आहार, विहार, निद्रा, क्रीड़ा सब भूल गई। शरीर की कांति क्षीण हो गई। मुरझाई लता के समान शिथिल हो गई।

उष्ण निश्वास लेती हुई कन्या को विवर्ण देखकर एक दिन उसकी माँ ने बड़े दुलारे से विमनस्यकता (उदासीनता) का कारण पूछा। लज्जावनत कन्या से कहा बेटी मौन क्यों साधा है? जो भी आधि व्यधि हो यथार्थ कह। बिना कहे रोग का इलाज नहीं होता। मैं अभी वैद्यादि (चिकित्सकों) को बुलाकर तेरा सही उपचार कराऊँगी। मुख से कहे बिना कार्यसिद्धि होना दुर्लभ है। कुछ क्षण विचार कर चन्द्रलेखा ने अपना मनोभाव माँ के समक्ष प्रकट कर दिया। नीतिकार कहते हैं कि–

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा च पृष्ठतः।
स्वकार्य साधयेत् धीमान् कार्य ध्वंश हि मूर्खतः॥

महारानी ने पुत्री का मन्तव्य जानकर सम्पूर्ण वार्ता राजा से निवेदन की। राजा सुनते ही हर्षोत्फुल्ल हो उठा। मेरी पुत्री ने बहुत सुन्दर उपयुक्त विचार किया है। महीपाल उसके अनुरूप योग्य वर है। मैं अभी महीपाल को बुलाकर इस शुभ कार्य को सम्पन्न कराता हूँ। राजा ने भृत्य द्वारा कुमार को बुलाकर अपना मन्तव्य प्रकट किया।

महीपाल ने नम्रता से उत्तर दिया राजन्! मैं परदेशी हूँ। मेरा कुल जाति वंश अज्ञात है। आप अपनी सर्वाङ्ग सुन्दरी गुणवती कन्या मुझे किस प्रकार देना चाहते हैं? "हे सुभग! तुम सत्य कहते हो समान जाति, उत्तम

वंश, कुल का ही वर होना चाहिए। आपका चारित्र विद्या गुण कला ही परिचय है। फिर भी यदि कहीं कमी है तो आप हमें अवगत कराइये। कुमार ने राजा का पक्का अभिप्राय जानकर अपना यथार्थ परिचय दिया। राजा बैरीसिंह अति प्रसन्न हुआ।

शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न, शुभ नक्षत्र में चन्द्रलेखा का विवाह सुनिश्चित हो गया। शहनाइयाँ बजने लगी! कहीं नृत्य-गान, कहीं श्रृंगार और कहीं सजावट होने लगी। नारियां मंगलाचार में संलग्न थी। कोई वर-वधु के पुण्य का कीर्तन करती तो कोई राजा-रानी का। निर्दिष्ट समय पर दोनों का पाणिग्रहण संस्कार हो गया। राजा ने कन्या को रत्नाभरण, स्वर्णाभरण, मणिमाणिक्यभरण, चीनपट्ट, दुकूलादि वस्त्र, महल, हाथी, घोड़े इत्यादि सामग्रियां प्रदान की।

सतखने (सात मंजिले) महल में महीपाल कुमार चन्द्रलेखा सहितनाना प्रकार की क्रीड़ाओं में विभोर हो गये। चन्द्रलेखा महीपाल को नवीन-नवीन कामकेलि और कुमार चन्द्रलेखा को नूतन-नूतन रतिकेलि सिखाने लगे। इस प्रकार से देवों के समान सुख भोगते हुए उनका बहुत सा समय सुख से व्यतीत होने लगा।

एक दिवस महीपाल कुमार अश्वारोही हो क्रीड़ा पर्वत में मनोरंजनार्थ गया। उपवन में परम वीतरागी केवली भगवान उदयाचल के सूर्यवर्ण समान स्वर्णमय सिंहासन पर गंधकुटी में अन्तरिक्ष में विराजमान धर्मोपदेश कर रहे थे। कुमार ने श्रद्धावनत भक्ति से शिरोनत हो कर युगल जोड़कर मस्तक पर रख नमस्कार किया। श्री प्रभू ने उसे श्रद्धावान निकट भव्य समझ कर द्विविध धर्म का यथा योग्य उपदेश दिया।

भो भव्यात्मन्! जो भव्यजीव प्राणी मात्र को अभयदान प्रदान करता है अर्थात् किसी को सताता नहीं है, पीड़ा देने का भाव नहीं रखता है संसार में वह निर्भय सिंह के समान विचरण करता है। जो अन्य को

पीड़ा देता है, सताता है वह भव-भव में उनके द्वारा पीड़ित किया जाता है। सताया जाता है जैसा बीज बोता है वैसा ही फल प्राप्त होता है। इस लोक में जो जीव जैसा शुभाशुभ कर्म करता है वैसा ही अच्छा बुरा फल पाता है। मैं श्रेष्ठी और हाली इन दो का दृष्टान्त देता हूँ। तुम एकाग्र चित्त से सुनो।

हे महीपाल! इस रतनपुर में ही एक श्रावक नाम का हाली रहता था वह प्रति दिन खेत पर जाता था। एक दिन उसने भयंकर काले नाग को खेत में आते देखा। दुष्ट हाली ने उसे फरसे से मार-मार कर अर्द्धमृतक कर मार्ग में फेंक दिया। उसी समय जिनदेव नामका श्रावक उस मार्ग में आया। उसका जहाज सागर में डूब गया था। वह किसी प्रकार प्राण बचाकर सात दिन में समुद्र पार कर आया था। थकान से चूर भूखा-प्यासा था। उसने वहाँ पर सिसकते, कंठगत प्राण हुए उस सर्प को देखा। दयाद्र हो उसने उसे महामंत्र णमोकार सुनाया। मंत्र सुनकर उसे मरते हुए सर्प ने शान्ति से प्राण त्याग कर महर्द्धिक व्यन्तर पर्याय प्राप्त की। अन्तर्मुहूर्त में यौवन पा अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव का वृतान्त ज्ञात किया। अपकारी और उपकारी का स्मरण कर उसने विचारा कि जो प्राणी अपने मित्र के उपकार को भूल जाते हैं वे जीवित ही मृतक समान हैं। तत्काल वह व्यन्तर मर्त्यलोक में आया। उच्चस्वर से जिनदेव सेठ से बोला, अहो! भद्र, आपके पंचनमस्कार मंत्र के प्रसाद से मैं नीच तिर्यंचगति से श्रेष्ठ देव हुआ हूँ इस समय मैं प्रत्युपकार करने में समर्थ हूँ आपको जो चाहिए वही कहिये। व्यन्तर के अनुरोध पर भी निस्पृही संतोषी जिनदेव ने कुछ नहीं माँगा। तब वह व्यन्तर प्रसन्न हो आदर से उसे ५ रत्न प्रदान कर चला गया। सेठ ने एक रत्न बेचा और भोजन सामग्री व रसोई के बर्तन खरीदे। पुनः भोजन पान कर जहाज पर आरूढ़ हो अपने घर पहुँचा हे राजन् यह अभयदान का महाफल है।

जीवहिंसा का परिणाम (फल) सुनो वह व्यन्तर देव वहाँ से हाली के घर जा धमका। उस सयम हाली खेत की घटना अपने परिवार को

सुना रहा था। बस क्या था शत्रु को देखते ही आग-बबूला हो गया। और उसके शरीर में दुस्सह भयंकर वेदना उत्पन्न कर दी। भयंकर वेदना से तड़पता हुआ घोर नरक की यातनाओं का अनुभव करने लगा। चलना-फिरना उठना-बैठना खाना, पीना, सोना, जागना सब कुछ भूल गया। हाय-हाय चिल्लाने लगा। आज भी उसी प्रकार पीड़ित चिल्ला रहा है आज १५ दिन हो गये, किन्तु क्षणभर भी साता नहीं मिली। कुमार केवली भगवान की वाणी के अनुसार वहां पहुँचा। यथोक्त दशा देखकर विस्मय करने लगा। वह पुनः केवली प्रभु की गंधकुटी में आया और हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछा-हे भगवन्! मेरी प्राणप्रिया सोमश्री समुद्र में जहाज फट जाने से वियुक्त हो गई, वह पुनः मुझे मिलेगी या नहीं! प्रभु ने बतलाया वह अभी जीवित है। रत्नसंचयपुर में श्री आदीश्वर भगवान के मन्दिर के पास उनकी शासन देवता श्री चक्रेश्वरी देवी के मन्दिर में तुझे मिलेगी। केवली भगवान के वचनों में अटल विश्वास कर कुमार अपने महल में आया। वह विचारने लगा। "केवली की वाणी अटल है, इसमें फर्क नहीं आ सकता। समुद्र चाहे मर्यादा उल्लघंन कर दे, मेरु चलायमान हो जाये, सूर्य पश्चिम में उदय हो, किन्तु केवली के वचन अन्यथा नहीं हो सकते। अब मुझे रत्नसंचयपुर जाने का प्रयत्न करना चाहिए।

हे राजन्! मैं रत्नसंचयपुर जाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा वहीं कुछ व्यापार करने की है। आप आज्ञा प्रदान कर मेरा मनोरथ सफल करें। कुमार ने अति विनय से अपने ससुर से आज्ञा मांगी। हे भद्र, मैं तुम्हारा उत्साह गिराना नहीं चाहता। परन्तु यहाँ पर आपको किसी वस्तु का अभाव तो है नहीं। आप जो चाहें वह मैं उपस्थित करुं। फिर यदि आपको जाना ही है तो शीघ्र अपना कार्य सम्पादन कर लौट आइये। मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको नहीं रखना चाहता हूँ। ससुर के वचन प्रमाणकर कुमार ने एक नवीन सुदृढ़ सुन्दर जहाज तैयार करवाया। आवश्यक वस्तुएँ अनेकों भांड, कई सेवकों से जहाज भरवा दिया। ठीक

ही है कर्मठ पुरुषार्थी सज्जन पुरुषों के कार्य में विलम्ब नहीं होता। इधर राजा बैरीसिंह ने अपनी सुपुत्री चन्द्रलेखा को अनेकों बहुमूल्य वस्त्राभूषण दास-दासी देकर महीपाल के साथ विदा कर दिया। कुमार के साथ अपना अथर्णव नामक मंत्री उन सबकी देखभाल के लिए भेजा। कुमार महीपाल ने जन-धन से परिपूर्ण जहाज लेकर शुभ दिन में प्रयाण किया। राजा पुत्री के स्नेह से बेटी जंवाई को पहुँचाने जहाज पर गया। दल-बल के साथ प्रयाण हुआ बेटी-जंवाई के स्नेह से राजा का कंठ गद्‌गद् और नेत्र अश्रु से विगलित हो गये। पञ्च नवकार मंत्र जाप के साथ कुमार ने प्रस्थान किया। अनुकूल पवन पाकर जहाज तीव्रगति से चलने लगा। राजा एकटक देखता रहा जब तक कि वह दृष्टिगत होता रहा। महीपाल ने सर्वकार्य मंत्री के अधीन कर दिये। स्वयं अपनी प्रिया के साथ नाना विनोद करने लगा। कभी सागर की उत्तांल तरंगों को दिखाता, कभी चन्द्रबिम्ब का निरीक्षण कराता, कहीं चकवा-चकवी का दृश्य देखते कहीं टापुओं की रोशनी देखते । कभी तीव्र पवन के झोकों से डगमगाते जहाज के भय से अपनी प्रिया को हृदय से लगाता, आश्वस्त करता। आमोद-प्रमोद के साथ मार्ग तय होने लगा।

संसार में तृष्णा, प्राणी को कृपाण के समान घातक है। लोभ में भी धन और वनिता का लालच विशेष अनर्थकारी है, मनुष्य की विवेक सम्पदा की घातक है। अथर्णव मंत्री विपुल धन-सम्पदा से भरा जहाज और अतिशय रूपसम्पदा की खान चन्द्रलेखा को देखकर मतिहीन हो गया। उसका धैर्य विवेक पूर्वक छूट गया। वह कुमार का प्राणनाश कर धन और उसकी प्रिया के लेने का उपाय सोचने लगा। वह विचारने लगा, इस समय सर्व-व्यवस्था मेरे हाथ में हैं। नौकर चाकर सब मेरे अनुकूल हैं। मैं जो चाहूं कर सकता हूँ। कुमार और राजकुमारी मेरे प्रति विश्वस्त हैं। अतः सरलता से मैं इन्हें धोखा देकर मनोरथ सिद्ध कर सकता हूँ नीतिकारों ने ठीक ही कहा है-धन सर्व अनर्थों की जड़ है—

अर्थो मूलमनर्थानां अर्थो दुर्गति कारणम्।
कषायश्चोत्पादको अर्थः दुखानां च विधायकम्॥

यह अर्थ धन इस लोक में तो अनर्थ का कारण है ही, परलोक में भी दुर्गति का हेतु है, कषायों को उत्पन्न करनेवाला और दुःखो का विधाता है। अथर्णव मंत्री को धन व काम का नशा चढ़ गया। मौका पाकर एक दिन अर्द्ध रात्रि में कुमार महीपाल को गहरी निद्रा में सोया देख मंत्री ने उसे समुद्र की उछलती लहरों को अर्पण कर दिया। स्वयं आकर हर्षभरा सो गया।

प्रातः हुआ। पौ फटी। लाल गोला पूर्व में आना चाहता है। उसी समय चन्द्रलेखा की निद्रा भंग हुई। सेज खाली थी। वह इधर-उधर देखने लगी। हैं यह क्या हुआ? क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ? मेरा प्रियतम कहाँ है? अरे यह तो सत्य है व्याकुल हो चिल्लाने लगी। हाय-हाय पतिदेव आप मुझ अबला को छोड़ कर कहाँ गये? क्या हास्य में कहीं छिपे हैं? यदि ऐसा है तो शीघ्र आइये। मैं आपका वियोग अधिक नहीं सह सकती। तुम्हारे दर्शन बिना मैं प्राण रखने में असमर्थ हूँ। आपने कभी ऐसा उपहास नहीं किया, आज क्यों किया? इत्यादि कहती हुई जोर से विलाप करने लगी। उसके उच्च स्वर को सुनकर जहाज के समस्त लोग आकर एकत्रित हो गये। सब ओर कुमार को देखा किन्तु हताश ही हुए। दुष्ट वंचक अथर्णव भी बनावटी हाय-हाय कर रुदन करने लगा। हे भृत्यो चारों ओर कुमार की तलाश करो। हाय! दैव ने यह क्या किया। तब सर्व सेवकों ने कहा हमने सर्वत्र खोज की किन्तु उनका कहीं पता नहीं लगा। तब वह दुराचारी मंत्री राजकुमारी से बोला, तू विषाद मत कर, अंधियारी रैन में वह नहीं मिलेगा। समुद्र तट भी समीप ही है। जहाज को किनारे लगाकर पूर्ण प्रकाश में अगाध समुद्र के गर्भ में तेरे पति का अन्वेषण करुंगा। मंत्री के वचन सुनकर कुमारी अपने पति को समुद्र में मग्न जान स्वयं भी गिरने को तैयार हुयी। मोह का यही स्वभाव है। मंत्री ने उसे रोका। हे सुन्दरी!

होनहार (भावी) किसी से टाली नहीं जाती। जो होना था वह हो गया। तू अब धैर्य धारण कर।

विवश हो राजकुमारी रुदन करने लगी। हाय-हाय कर पत्थर को भी द्रवित करने वाला शोक किया। हे नाथ तुम कहां हो मेरे जीवनाधार एक बार आओ, मुझे सान्त्वना दो। तुम अंधकार में क्यों उठे? कहाँ गये? कैसे पड़े? किसी ने नहीं देखा यह क्या हुआ? अब मैं क्या करुं कहां जाऊं? मेरा कौन सहाय है? इस प्रकार विरह व्याकुल रमणी को देख पाखण्डी मंत्री कहने लगा, हे प्रिय ! मैं तेरा आज्ञाकारी सेवक हूं। मेरे रहते तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। जो पति सम्बन्धी कार्य है वह मैं सम्पादन करुंगा। तू समझदार है। गई वस्तु का शोक नहीं करना चाहिए। "गते शोकं न कुर्यात्" तेरा यह मनोज्ञ रूप लावण्य मेरा यौवन रति समान चितवन देख मैं भी अधीर हो रहा हूँ तू खेद तज। मैं सर्व कामना पूरी करूँगा। प्रसन्न हो। मेरे साथ अनुपम भोगों को भोग। तेरी यह कांति, भोग, श्री कुछ ही दिन की है इसे व्यर्थ मत खो। इस प्रकार उस नीच कामी के वचन सुन चन्द्रलेखा स्तब्ध हो गई। मन में विचारा कि इसी कुकर्मी ने मेरे पति को सागर में डाला है यह दुष्ट है। मेरा शील अवश्य भंग करेगा। अभी इसके साथ सब सेवक हैं। सर्वधन भी इसके हाथ में है। इस समय मैं एकाकी हूँ। शरीर शक्ति से भी पार नहीं पा सकती। अब शील रक्षण कैसे करूँ। हाँ ठीक होगा, कोई आशा नहीं बस छल से ही इसे वश में करना चाहिए। यदि सर्वथा निषेध किया तो यह बलात् मेरा शील रत्न हरण कर लेगा। ऐसा सोचकर कि नीतिकार कहते हैं—

"समान में शूर-वीरता दिखालावे, महंत पुरुषों में प्रशमभाव, नीचों की अवज्ञा, नम्रीभूत व विनयशीलों का सत्कार करना, सरल में सरलता, मूर्खों में कपटवृत्ति द्वारा अपना कार्य सिद्ध करे। यह मूर्ख है सो इसे आशा प्रपंच में फंसाने से ही मेरा शील रक्षित हो सकता है। कुछ दिन तक आशा-दिलाशा देकर इसे रखना चाहिए। हाँ याद आया प्रस्थान के समय

पतिदेव ने कहा था कि मेरी प्रथम प्राणप्रिया गुणश्री पत्नी का मिलाप रत्नसंचयपुर के चक्रेश्वरी देवी के मन्दिर में होगा। केवली का वचन है। यह अवश्य सत्य होगा। इसलिए इस धूर्त से कुछ धन ले रत्नसंचयपुर चलना चाहिए। प्रकट में बोली, हे मंत्री तू मुझे अतिप्रिय है मेरी भी यही अभिलाषा थी। परन्तु मैं इस समय यह तेरा मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकती। वह विदेशी भरतार धन का क्षय करने वाला मुझे अनिष्ट ही था इसलिए मैंने प्रतिज्ञा की थी, "हे चक्रेश्वरी माता अगर मुझे दूसरा पति मिलेगा तो एक माह का उपवास कर तेरे मंदिर में पूजा करुँगी, सो हे पुरुषोत्तम! मेरी अभिलाषा पूर्ण हुई। अब सर्व प्रथम, मैं एक माह तक चक्रेश्वरी माताजी के मन्दिर में मौनव्रत ले पूजा कर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करुंगी। यह सुन मंत्री हर्षोत्फुल्ल हो, सोचने लगा। मेरा कार्य सिद्ध हुआ। "उतावला सो बावरा" अब कुछ दिन संतोष धारण करुं। प्रकट में बोला, हे प्रिय! तुम्हारा वचन मुझे प्रमाण है। जैसा तू चाहे वैसा कर और कोई इच्छा हो तो प्रकट कर मैं सर्व इच्छाओं को पूरी करने में समर्थ हूँ।

कुछ दिन बीत गये जहाज रत्नसंचयपुर पहुँचा। चन्द्रलेखा आदीश्वर प्रभु का ध्यान और चक्रेश्वरी माताजी की भी विनय, सत्कार व सम्मान आदि करती रही। णमोकार मंत्र का निरन्तर जाप करती रही। जहाज उतरा। मंत्री बहुत से वस्त्राभूषण एवं रत्न थालों में भरकर वहां के राजा के भेंट करने हेतु लेकर गया। नमस्कार कर भेंट प्रदान की। राजा भेंट ले तुष्ट हुआ। उसे रहने को महल दिया। अथर्णव महल में रहने लगा। राजा ने प्रसन्न हो उसे मंत्री के प्रधान पद पर आसीन किया। दान की महिमा अपार है।

दानेन तिष्ठन्ति यशांसि लोके

दान के प्रभाव से राजा सन्तुष्ट हुआ तो क्या? देव भी वश हो जाते हैं। अस्तु।

जहाज फटने पर सोमश्री की स्थिति

जहाज फट गया था। जिससे सोमश्री समुद्र में पड़ी। भाग्य से एक फलक का सहारा लेकर पांच दिन में तट पर आई। भूख-प्यास की बाधा की परवाह न कर पति की वह खोज करने लगी। सम्भव है मेरी ही भांति मेरे पतिदेव भी यहाँ आये हों चारों ओर खोजा कहीं पता नहीं लगा। हताश हो विलाप करने लगी। दिशाऐं करुण ध्वनि से व्याप्त हो गईं। उसका विलाप ठीक वैसा ही दुःख भरा था जैसा सीता ने राम वियोग में किया। मनुष्यों की क्या बात तट के पशु-पक्षी भी हो खड़े रह गये। चंचल कपि समूह भी शाखाओं पर चित्राम से बैठ गये। सोमश्री उच्चस्वर से विलाप करती हुई मूर्च्छित हो, पड़ी गयी। क्षणमात्र में शीतल पवन और झरनों के शीतल कणों ने उसे सचेत किया। उठकर उसने एक वृक्ष की शाखा में फांसी बनाकर बांधी और मरने का उद्यम करने लगी। दैवयोग से उसी समय वन में कोई तापसी फल-पुष्प लेने आया। उसे गले में फांसी सहित प्राण-त्यागती देख दयार्द्र हो पेड़ पर चढ़कर फांसी को काट दिया। सोमश्री नीचे पड़ी। शीतलोपचार से उसमें चेतना आयी। तापसी बोला हे बहिन! आत्मघात महानिंद्य है। तू क्या शास्त्र नहीं जानती? ऐसा खोटा विचार क्यों किया? विलाप करती हुई सोमश्री ने अपना सम्पूर्ण वृतान्त तापसी को सुनाया। तापसी ने उससे कहा बहिन तू भय मत कर। रत्नसंचयपुर में चक्रेश्वरी देवीजी का प्रसिद्ध मंदिर है। उसमें एक महीने को मौन व्रत उपवास कर। जो भी वियोगी स्त्री-पुरुष देवी की विधिपूर्वक आराधना करता है उसे देवी उसके पति व स्त्री से मिला देती है। कदाचित् उसकी मृत्यु हो गई हो तो शीघ्र उत्तर देती है। तुम वहां जाओ। यथाविधि मासोपवास की दृढ़ प्रतिज्ञा धार, देवी की आराधना करो। हे पुण्यमूर्ति! यह सम्यक् दृष्टि देवी तेरा दुःख अवश्य दूर करेगी। पति के जीवन मरण के निश्चय होने पर तू इच्छानुसार कुछ भी करना। विचारपूर्वक कार्य करने उभयलोक सुख प्राप्त होता है। यश भी मिलता है।

तापसी की आज्ञा प्रमाण सोमश्री विश्राम करती धीरे-धीरे मार्ग तय करती हुई ६ महीने में रत्नसंचयपुर पहुँची शीघ्र ही चक्रेश्वरी देवी के मन्दिर में जा प्रणाम कर विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगी। हे देवी मेरे पति से शीघ्र समागम करा अन्यथा इस भव में मेरे अन्न-जल का त्याग है।" इस प्रकार कह मौन धारण कर देवी के सम्मुख विनय से खड़ी हो गई।

चन्द्रलेखा महल में बैठी थी। मंत्री आया तब कुमारी बोली, देखो यह रत्नसंचयपुर है यहीं चक्रेश्वरी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है। पूर्व प्रतिज्ञानुसार मुझे देवी के यहाँ एक माह तक मौनव्रत लेकर आराधना करनी चाहिए। देवी को दिये वचन के अनुसार नहीं करने से देवी यदि कुपित हो गई तो हमारे कार्य में बाधा डाल सकती है।

चन्द्रलेखा के संगम का आतुर मंत्री ने कहा, ठीक है। शीघ्र जाओ। निर्मल बुद्धि से प्रपञ्च करने पर भी उत्तरोत्तर बुद्धि विवेक युक्त ही होती जाती है। चन्द्रलेखा शीघ्र ही देवी के सम्मुख जा प्रणाम कर नम्रता से बोली, "हे देवी शीघ्र मेरे पति को मिलाओ अन्यथा मेरे आजन्म आहार जल का त्याग है"। इस प्रकार दृढ़ संकल्प कर यथायोग्य देवी की आराधना का मौन ले स्थिर खड़ी हो गई।

इधर राजा महीपाल, दुष्ट मंत्री द्वारा समुद्र पतित्, अगाध जल से कुस्ती करने लगा। उसने पंचनमस्कार मंत्र का अखण्ड ध्यान किया। बाहुबल से समुद्र को चीरने लगा कुछ समय बाद उसने एक विशालकाय मच्छ को देखा और सावधानी से उछलकर उस पर चढ़ गया। मच्छ प्रथम तो अथाह सागर की उत्तांल तरंगों से खिन्न था। दूसरे कुमार जोर से उछल कर उस पर आसीन हुआ तो वह भयातुर हो तीव्र वेग से उत्तांग तरंगों को चीरता हुआ अति शीघ्र तीर के समीप आ गया।

रात्रि समाप्त प्रायः थी पौ फटी, हलका सुनहला प्रकाश प्राची ने बिछाया उसके झुरमुट में कुमार ने उच्च जल राशि को देखा। अति निकट

तट को देखा कुछ आशंका हुयी। उपाय का भय हुआ। उसी क्षण मच्छ से उछल कर जल में कूद पड़ा और अवशेष जल को भुजाओं से पार कर किनारे पर आ पहुँचा। अपना नवीन जन्म समझा। भास्कर देव उदयाचल पर आ पहुंचे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों अंधकार को नष्ट कर महीपाल के हृदय कमल को विकसित करना चाहता है। कुछ समय विश्राम कर, कुमार उठा। धीरे-धीरे गमन करने लगा। मन में द्वंद मचने लगा। "अहो दैव! तू सर्वथा मेरे प्रतिकूल है"। मैं चाहता कुछ हूँ और मिलता उसके विपरीत दूसरा ही है। मैं तो प्रथम बिछुड़ी हुई प्राणप्रिया से मिलने जा रहा था कि द्वितीय बल्लभा से भी वियोग हो गया। सत्य है भवितव्य टाली नहीं जा सकती। क्या मेरा दुर्भाग्य मुनिराज केवली भगवान की वाणी को भी विफल कर देगा। नहीं! नहीं! **मुनियों के वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकते**। इस अगाध समुद्र में कौन जीवित रह सकता है? किन्तु मैं जीवन्त आ पहुँचा। यह विशेष बात ही है। इस प्रकार तर्क-वितर्क करता जा रहा था कि एक सुन्दर पानी से भरा सुशील ठंडे जल से परिपूर्ण सरोवर को देखा। सर्वप्रथम मिष्ट जलपान कर तृषा जन्य खेद शान्त किया। स्नानादि क्रिया से निवृत्त हुआ। समुद्र के क्षार (खारे) जल से दग्ध शरीर की शान्त की। गीला वस्त्र धारण कर तट पर विश्राम किया। अशान्त मन को संतुष्ट करने के लिए सुललित स्वर में गान प्रारम्भ किया। उधर मधुर ध्वनि सुन कर वन में मृग (हरिण) सरोवर के चारों ओर आकर चित्रित से खड़े हो गये। जिस प्रकार निर्विकल्प ध्यानी मुनी अपने आत्मानन्दरस से निमग्न होते हैं उसी प्रकार ये स्थिर थे। पंचम स्वर से किया गान सुखीजनों को विशेष आनन्दवर्द्धक और दुखियों के संपात को हर मनोविनोद का कारण है। कामनियों को आकर्षण करने का यह सरस मंत्र है। कुमार गान में लीन था। उसी समय एक तापसी कन्या उस सरोवर में जल लेने आई। उसकी रूप छटा अद्वितीय थी। कर में कलश लिये विशेष सुषमा विखेर रही थी। उसके प्रत्येक अंग-प्रत्यंग मानों सांचे में ढाले गये हों।

कुमार उसकी रूप गुण कला से चकित हो विचारने लगा कि क्या यह कोई राजकन्या, रोहिणी या रति है अथवा अप्सरा है कि विद्याधरी या नागकुमारी है अथवा वल्कल धारण किये कोई तापस कन्या है? विचार कौन हो सकती है? करते हुए उसने विवेक से काम लिया। अरे । मैं क्या सोच गया? मुझे परनारी के विषय में विकल्प करने से क्या प्रायोजन? अपना काम सिद्ध करना चाहिए। चलूँ इससे यहाँ की नगरी व नरेश के विषय में पता लगाऊँ। किन्तु एकाकी (अकेली) इसके पास मेरा जाना उचित नहीं। पुरुष या स्त्री शील धर्म का रक्षक परम आवश्यक है। इसलिए दूर से ही पहले इसकी चेष्टा देखूँ, यह क्या करती है। सोच कर बैठा रहा।

तापस कन्या उसकी मधुर ध्वनि से पहले ही विचलित हो चुकी थी। वह वहां खड़ी रह कर कुमार महीपाल की मधुर सौन्दर्य रश्मि को निर्निमेष दृष्टि से निहारती रही। यह क्या कामदेव है? चन्द्र है? सनत्कुमार चक्रवर्ती है? मुरारी (कृष्ण) है? विद्याधर है? अथवा स्वर्ग का देव है? यह नर रूप में क्या नागकुमार है? ओह! मेरा मन तो अधीर हो रहा है। इसके लावण्य रूपी जल को पार करने की मुझ में शक्ति नहीं। मेरे नेत्र चकोर तो इसमें गड़ गये हैं। इस प्रकार कामबाण से घायल एक ही जगह पुतली-सी खड़ी रही। बार-बार पानी भरने का उपक्रम करती पर जल भरने में सफल नहीं हुई। महीपाल-कला, गुण, विद्या, विशारद उसकी चेष्टा से उसके चित्त के अभिप्राय को समझ गया क्या वास्तव में यह तापस कन्या मुझ में आसक्त हुई। अरे, वाह रे काम तू बड़ा ढीठ है। देखो, तपोवन में रहने वाली रूखा-सूखा भोजन करने वाली है। वह भी एक ही बार मिलता है, भूमि शयन करती है। अपना शरीर मात्र ही परिवार है। वस्त्र भी जीर्ण-शीर्ण है। इस अवस्था में भी काम की व्यथा से विषय वांछा से युक्त है। यह काम विकार भयंकर पिशाच है। पाप कर्मों का फल है। उद्धत यौवन बड़े-बड़े यत्नाचारियों को

भी विचलित कर देता है। यह बड़ा ठगिया है। तीनों लोकों के सभी प्राणी इसके वशीभूत हुए हैं। महीपाल इस प्रकार विचार निमग्न था कि वह चञ्चला नेत्रा लीला पूर्वक कुमार के समीप आई। कोकिल समान मधुर स्वर में बोली -"हे मनोज्ञ, आप कौन है? कहां से आये है? किधर जाना है? आपका नाम क्या है? गांव कौन है? किस उद्देश्य से यहां पधारे है?" आप कृपाकर बता सकते हैं?

तापस कन्या के प्रश्नों को उत्तर देते हुए कुमार बोला, मेरा नाम महीपाल है। क्षत्रिय वंशोत्पन्न हूँ। समुद्र के मध्य से यहां आया हूँ। "हे सुन्दरी! यह कौन सा द्वीप है? नगर कौन है? इस नगर का रक्षक कौन है?" तब तापस कन्या ने कहा, हे भद्र मेरे साथ विवाह करो तो आपको बहुत-सी सम्पदा यहीं दिलवाऊँ। प्रचुर सम्पदा से तुम इन्द्र से भी बढ़कर हो जाओगे। प्रत्युतर में कुमार बोला, हे बाले! तू तो दीक्षित प्रतीत होती। तेरे पास धन कहां से आया? कुमार के वचन सुनते ही तापस कन्या बोली, हे सुभग मैं दीक्षित नहीं हूँ। न मैं तापस कन्या ही हूँ। मात्र तपस्विनी का वेष धारण कर रहती हूँ। मेरे जीवन का परिचय चाहते हो तो सुनो।

सिंहलद्वीप में रमणीक श्रीपुर नगर है। वहाँ का जितशत्रु राजा था। न्याय मार्ग में आरुढ़ प्रजावत्सल, प्रचण्ड पराक्रमी धर्मात्मा और कला गुण प्रेमी था। उसकी शील गुण रूप सम्पन्न पुष्पचूला नाम की रानी थी। परम विवेकी प्रतापवान श्रीधर नाम का पुत्र था। चिरकाल तक राजा सपरिवार धर्म, अर्थ, काम की साधना करता हुआ सुख से समय व्यतीत कर रहा था। एक दिन कुछ कारण वशात् राजा को वैराग्य हो गया। संसार शरीर भोगों की निस्सारता, क्षणभंगुरता का विचार कर उसका चित्त व्यग्र हो उठा। उसने अपने प्रिय पुत्र से कहा-बेटा पूर्व पुण्य से मैंने यह राज्य वैभव सुख सम्पदा पाई और भोगी है। अब तुम राज्य सम्भालो मैं परलोक की सिद्धि के लिए तपोवन में जाऊँगा। परलोक यात्रा का

पाथेय तैयार करना परमावश्यक है। "मोक्ष पुरुषार्थ साधने का उपाय करुँगा तुम राज्य विभूति धारण कर इस राज्य का समीचीन संचालन करो" इस प्रकार कह कर उसके सिर पर राज किरीट पहना तिलक कर राज सिंहासन पर आसीन किया। स्वयं पत्नि सहित धनञ्जय नामक गुरु के सानिध्य में साधु हो गया। तापसियों के व्रत धारण कर उन्हीं के पास कुटियां में रहने लगा।

कुछ काल बीतने पर पुष्पचूला (जो तापसिनी है) के गर्भ के चिन्ह स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगे। यह दशा देख, राजा जितशत्रु ने रानी से पूछा। हे भद्रे! तूने यह लज्जास्पद, कुकर्म कब और कहां किसके साथ किया? विनयावनत् करबद्ध तापसिनी भेष धारी रानी ने कहां -हे स्वामी! आप अफसोस न करें। मैंने किसी के भी साथ कोई प्रकार का कुकर्म नहीं किया हैं। मुझे दीक्षा के पूर्व ही गर्भ था। गर्भवती जानकर गुरु दीक्षा नहीं देंगे इससे मेरा व्रत धारण समय कुछ अवधि के लिए रुक जाता। इसलिए नहीं बताया। सर्व वृतान्त राजा ने तापस गुरु को विदित कराया। राजर्षि तापस की बात सुनकर धनञ्जय तापस ने अन्य तापसिनियों से राजर्षिणी के गर्भ संरक्षण के लिए आदेश दिया। सबको ज्ञात कराया कि पूर्व का ही गर्भ है। अब इसका यत्न से पालन एवं रक्षण करो। प्रसूति होने के बाद, व्रतों में दृढ़ हो जायेगी।

नवमें मास मेरा जन्म हुआ। वन मे तापस कुटी में ही प्रसूति कराई। सभी तापसिनियों ने मेरी और मेरी मां राजर्षिणी की हर प्रकार से व्यवस्था की। प्रसूति के दशमें दिन धनञ्जय तापस ने मेरा "शशि प्रभा" नामकरण किया। क्रमशः द्वितीया के मयंक सम मैं वृद्धि को प्राप्त हुयी। नाना प्रकार की वनश्री के मध्य तपस्विनीयों के हाथों में मेरा जीवन पनप कर आज यौवन अवस्था में आपके समक्ष है। हे कुमार! मैं राजकन्या हूँ। मेरा कुल, वंश पराम्परा शुद्ध है। आप निश्चित समझिये। मेरा पिता और गुरु धनञ्जय दोनों ही मेरे विवाह के विषय में अति चिंतित हैं। एक रहस्य

की बात है कि मेरे पिता के पास तीन दिव्य विद्याएं हैं। देवोपुनीत १. खाट, २. दिव्य यष्टी (लकड़ी) और ३. कामरूपणी विद्या (मनोवाञ्छित रूप बनाने वाली)।

१. खाट पर सवार होकर मनुष्य आकाश मार्ग से क्षणभर में इष्ट स्थान पर पहुँच जाता है। २. यष्टी विद्या को हाथ में लेकर अकेला भी लाखों सुभटों को जीतने में समर्थ होता है। और ३. कामरूपिणी विद्या के प्रभाव से क्षणमात्र में मनोवाञ्छित रूप प्रकट हो जाता है। जो विशेष जाप्य, होम, अनुष्ठान, कष्ट सहने पर भी सिद्ध नहीं होतीं, वे भी केवल पाठ मात्र से शीघ्र सिद्ध हो जाती हैं। ये तीनों विद्या मेरे पिता के समीप हैं वे सुख भोगते हैं। पिता की आज्ञा से मैं जल भरने यहां आई हूँ। भाग्य से आप जैसे पुरुष पुण्य का दर्शन हुआ। मेरा मन अब अन्यत्र नहीं जाना चाहता है। इस प्रकार नीचे नयन कर मौन से खड़ी रही।

महीपाल अत्यन्त हर्षित हुआ। परन्तु विवेकीजन उत्सुक नहीं होते। धैर्य से उसने नीतिपूर्वक उत्तर दिया। हे मनोज्ञ! तुम्हारा पिता यहां आकर तुम्हें सम्मान पूर्वक यदि मुझे देगा तो मैं अवश्य स्वीकार करुँगा। शशिप्रभा कुछ सोच, जल भरा घड़ा लेकर खिन्न भाव से अपनी कुटिया में चली गई।

सखियों के मुख से माता-पिता ने शशिप्रभा की उदासी का कारण ज्ञात कर कहा। बेटी, यदि तेरी इच्छा है तो हमें कोई विरोध नहीं हम तो तुम्हारा विवाह करना ही चाहते हैं। आज हमें चिन्ता मुक्त कर तुमने हमारा बड़ा उपकार किया। योग्य वर को कन्या देव माता-पिता का कर्तव्य है, हे बाले वह कौन मनोज्ञ वर है? जिसने तेरा मन हरण किया है, कहां है? चलो शीघ्र जाकर मैं उसके दर्शन कर तेरी मनोकामना पूर्ण करता हूँ।

प्रमोद भरा तापसी सरोवर पर पहुँचा। कामदेव स्वरूप कुमार को देख मन में यह विचार किया कि पुत्री ने अनुरूप योग्य वर ही पाया। कुल

जाति, परम्परा ज्ञात कर आनन्द सें घर ले गया। शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न में दोनों का विवाह कर दिया। समस्त विवाह सम्बन्धी क्रिया पूर्ण होने पर मोचन हथलेवा के अवसर पर राजर्षि ने कुमार से कहा, हे कुंवर जी आपकी इच्छानुसार आप अपने योग्य वस्तु मांगिये, मैं वही दूंगा। श्वसुर की प्रार्थना सुनकर महीपाल ने पूर्व अवगत प्रभाव वाली दिव्य खाट, यष्टी और कामरूपिणी विद्या देने की प्रार्थना की। यह सुनते ही राजर्षि चौंक पड़ा। हैं, इसे इन दिव्य वस्तुओं का भेद कैसे लगा? जो हो अब तो वचनबद्ध हूँ। मांगा वही देना होगा। प्रथम तो यह अब मेरे पुत्रवत् जमाई हुआ,और दूसरे प्रत्यक्ष वचन प्रदान किया है कि जो इच्छित हो मांगो। अतः वचन लोप से अपयश होगा। अपकीर्ति फैलेगी। इसलिए इनको दे देना ही उत्तम है। इस प्रकार विचार कर तीनों दिव्य वस्तुएं प्रदान की दीं। कुमार ने बड़े यत्न से उन्हें अपने अधीन कर लिया। नव-दम्पति प्रेम विभोर हो एक-दूसरे का मनोरंजन करते हुए विषय सुख में तल्लीन हो गये। स्नेहासक्त उनके दश दिन, बात की बात में निकल गये। अनन्तर श्वसुर से आग्रह कर जाने की आज्ञा मांगी। बड़े कष्ट से राजर्षि ने अनुमति प्रदान की। तब महीपाल खाट पर प्रिया सहित सवार हो आकाश मार्ग से चल पड़ा। प्रयाण बेला में शुभ शकुन हुऐ अनेकों पर्वत, नगर, नदी, ग्रामों को उल्लघंन कर अपने चित्त में अनेक कौतुहल करता हुआ वायु सदृश तीव्र गति से रत्नसंचयपुरी नगरी में जा पहुँचे। सर्वप्रथम चक्रेश्वरी देवी के मन्दिर की खोज की फिर नगरी से थोड़ा दूर पर एक वृद्धा के यहाँ सांयकाल विश्राम किया।

प्रातः काल हुआ। उदित रवि रश्मियों के सुनहले प्रकाश में शुभ शकुनों के साथ नगरी में प्रवेश किया। वहां किसी अगम्य (गुप्त) स्थान में खटिया और यष्टी की स्थापना कर दोनों ने भोजन किया। फिर स्वयं ने अनन्तर हाथ में दिव्य यष्टी-छड़ी लेकर प्रियमिलन की आशा से नगरी में प्रवेश किया। महादेवी के मन्दिर का पता पूछता हुआ कुछ ही कदम गया

होगा कि सम्मुख आते ही दुष्ट मायाचारी अथर्णव मंत्री को देखा अनर्थ की आशंका से कुमार ने उसकी दिव्य-दृष्टि पड़ने के पूर्व ही कुबड़े का रूप धारण कर लिया। वह नगरी में इधर-उधर घूमने लगा। "इस समय यह अथर्णव बलवान है, कहीं मेरा भेद न जान ले" ऐसा विचार कर अपनी प्राण-प्रिया के पास भी वापिस नहीं आया।

इधर शशि प्रभा सोचने लगी शाम पड़ गई रात्रि भी आ गई। हाय अभी तक मेरा प्राणप्रिय नहीं आया। आखिर उस गुप्त स्थान में वृद्धा से शशिप्रभा ने पूछा माँ रात्रि हो गई किन्तु तेरा पुत्र-अभी तक नहीं आया। हाय, क्या किसी दुर्जन ने उस रूप गुण राशि का कुछ बिगाड़ तो नहीं किया? क्या करुं ? कहाँ जाऊँ? माँ! मैं प्रिय के वियोग में एक घड़ी भी बिताने में समर्थ नहीं हूँ। अवश्य प्रातःकाल तक मेरे प्राण पखेरु उड़ जायेंगे। मां कोई उपाय करो। आंसू पोंछ सान्त्वना देते हुए वृद्धा बोली-धैर्य धारण कर। प्रातःकाल तक तेरा पति नहीं लौटा तो तू यहां इस नगरी में श्री १००८ आदीश्वर भगवान का मन्दिर जिनालय है, उसी में श्री ऋषभ देव प्रभु की शासन देवी, महादेवी चक्रेश्वरी माता जी का स्थान-मन्दिर है। वो देवी सभी विरही जनों का विरह दूर करती है। वहाँ जाकर अन्न-जल का त्याग कर यदि तू उसके सम्मुख विधिपूर्वक उसका सम्मान कर ठहरेगी। तो अवश्य वह कृपा पूर्णा तुझे तेरे पति से मिला देगी। वृद्धा के वचनों में विश्वास कर किसी न किसी प्रकार अति कष्ट से रात्रि व्यतीत की। पति वियोग से खेद खिन्न, व्याकुल चित्त श्रीजिन भवन (चैत्यालय) में पहुँच श्री आदीश्वर भगवान के दर्शन किये। स्तवन किया। नमस्कार कर महादेवी चक्रेश्वरी माता के समक्ष उपस्थित हुई। विनय से नम्रीभूत प्रार्थना करने लगी, हे मात! हे परोपकारिणी! संकट मोचिनी माँ मुझे मेरे पति से मिला दे। यदि तू पति मिलन नहीं करायेगी तो मेरे आहार-जल का त्याग है। इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा ले उन पहली दो महिलाओं के पास खड़ी हो गई। मौन धारण कर लिया।

महीपाल की तीनों प्रिया चित्राम-सी अचल, स्थिर हो गयीं। जैसे कोई कर्मकालिमा नाश करने लिए कोई योगी ध्यान लगाये हो। न हिलें न चलें, न बोलें। ज्यों की त्यों पुतली एकाग्र ध्यानारुढ़ हो गईं। विवेकी जन इनकी दशा देख कर विचार करने लगे कि ये कोई नाग कन्याऐं हैं या अप्सरा? किस हेतु से यहाँ अन्न-जल का त्याग कर खड़ी हैं।

इन तीनों की चर्चा वार्ता सर्वत्र फैल गई। नगरी के प्रत्येक कोने से नर-नारी दल आने लगा। कौतुक से सब अधरी थे-मन्दिर में आने-जाने वालों की चहल-पहल मच रही थी। किसी को भी इनके मन का भेद समझ में नहीं आया। इन दर्शकों में से कोई भद्र पुरुष पुरी के नरेश विजितारी के पास गया और इन तीनों वनिताओं का यथावत् स्वरूप निवेदन किया। "हे नराधिप! तीन परदेशी स्त्रियाँ पुतलियों के समान एकदम मौन ले, माता चक्रेश्वरी देवी के सम्मुख ध्यान-मग्न हैं। उनका रूप सौन्दर्य अद्वितीय है। न हिलती हैं न डुलती हैं, न भाषण करती हैं, न भोजन ही करती हैं। इनकी रूपराशि अभूतपूर्व (अलौकिक) हैं। उनका मुख चन्द्रमा को भी जीतने वाला है। नेत्रों की शोभा से कमलों को भी तिरस्कृत किया है। स्वर्ण वर्ण शरीर कुन्दन को भी लज्जित करता है। इनके शरीर आङ्गोपाङ्ग सर्वाङ्ग सुन्दर है। अनुपम केश राशि है। हे नरेश! अधिक क्या कहूँ उनकी शोभा उनमें ही है। आप ही इस विषय में प्रमाण है। इस प्रकार उस पुरुष ने राजा के समीप विज्ञप्ति की।

आश्चर्यचकित कौतूहल भरे राजा ने परिवार सपुरजन चक्रेश्वरी महादेवी के मन्दिर की ओर प्रयास किया। सर्व प्रथम श्री १००८ आदीश्वर प्रभु को विधिपूर्वक हाथजोड़ मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। पुनः माता चक्रेश्वरी की यथायोग्य विनय सत्कार कर उन तीनों महिलाओं से बोला, आप कौन हैं? कहाँ से आई हैं? किस अभिप्राय से चित्रवत् स्थित हो? किस कारण से जीवन की आशा छोड़ दी है? किस साधना के लिए आप इतना कष्ट परीषह सहन कर रहीं हैं? अनेक प्रश्न किये जाने पर भी

राजा उत्तर पाने में असमर्थ रहा। उसका मन उत्सुक था, हृदय लालायित था, उनके साथ वचनालाप करने को परन्तु निराशा ही मिली।

उसी समय भूपति ने नट मण्डली को बुलाकर उन्हें बुलवाने की आज्ञा दी। नटों ने हर प्रकार की नाट्य-कला प्रयुक्त कर चेष्टा की किन्तु सब विफल हुई। न बुला सके न हंसा सके। राजा हैरान था? क्या करें तब नृपति ने सेवकों को आज्ञा दी कि नगर में घोषणा (डोंडी) कराओ, जो उत्तम पुरुष अपनी कला, विद्या, उपाय से इन रमणियों का बुलवायेगा वह राजदरबार में एक लक्ष (१००००००) दीनार पारितोषिक में प्राप्त करेगा। नगर में पटह ध्वनि घोषित हो गई। चारों ओर यही चर्चा, यही वार्ता इसी का बोलबाला था। चारों ओर पटह लिए घोषक घूम रहे थे। मार्ग में एक कुब्जक ने पूछा तुम क्या घोषणा कर रहे हो, मैं अपनी विद्या के बल से उन तीनों को बुलाने में समर्थ हूँ। अवश्य ही मैं वचनालाप सहित कर दूंगा। कुब्जक के वचन सुनकर किंकर मुस्कराये। कुछ सोचा और उसे साथ में ले कर मन्दिर की ओर चले।

अशोभन, हास्य का पात्र, काला शरीर, कुब्जक, दुबला-पतला लड़-खड़ाते पग रखता, डगमगाता चलने लगा। मार्ग में सूखे ताड़ के पत्र एकत्रित कर मोटा शास्त्र बना लिया। कितने ही बाल वृद्ध हास्य करते हुए साथ-साथ चलने लगे। लकड़ी टेकता, कर में मोटी पुस्तक ज्यों-त्यों राजा के समीप मन्दिर में पहुँचा। विनयपूर्वक श्रद्धा भक्ति से प्रथम आदि प्रभु को नमस्कार किया। पुनः देवी माँ का विधिपूर्वक विनय कर राजा को आशीर्वाद दिया।

अवनिपाल उस अजनबी बेरूप कुब्जक को देख विस्मय करते हुए विनय से बोले हे कुब्जदेव आपके हाथ में यह कौन-सा शास्त्र है? आप कौन है? कहाँ से आये हैं? आपने किन-किन शास्त्रों का अध्ययन किया है? यदि आप कोई विशेष कला, विज्ञान, विद्या में कुशल हैं तो इन तीनों को वचनालाप कराओ।

राजा की प्रश्नावली पूर्ण होने पर कुब्जक बोला, हे नराधीश! मैं अष्टाङ्ग निमित्त का ज्ञाता हूँ यह अष्टाङ्ग निमित्त शास्त्र है। देव ने प्रसन्न होकर मुझे यह विद्या दी है। यह पुस्तक बड़ी चमत्कारी है। साधारण जन इसे देख पढ़ नहीं सकते। जिस समय देवराज ने यह पुस्तक मुझे दी उस समय देववाणी हुयी कि जो पुरुष शीलवान पुरुष और सती स्त्री के द्वारा उत्पन्न होगा। वही इस पुस्तक की वर्णमालिका, शब्दमालिका को देख पढ़ सकता है। विजाति (जिसकी माँ एक और पिता दो ऐसी स्त्री से उत्पन्न संतान विजाति है) इसे नहीं पढ़ सकता अथवा जो कुल्टा जार स्त्री अनेक पुरुषों को सेवन करे उससे उत्पन्न संतान को भी विजाति कहते हैं। ऐसा मनुष्य इसके अक्षर नहीं देख सकता है। हे राजन यह पुस्तक बड़े देव की दी हुई है। किसी साधारण मनुष्य की नहीं है। इससे द्विजाति (शुद्धि जाति) विजाति (अशुद्धि व्याभिचार) की लक्षणा परीक्षा हो जाती है।

राजा ने आश्चर्यचकित हो कहा-मैं तुम्हारे इस ग्रंथ को देखना चाहता हूँ। तब उस बनावटी कुब्जक ने पुस्तक की पूजा कर "ॐ हूँ फट्" इन अक्षरों का उच्चारण करते हुए राजा के हाथ में पुस्तक प्रदान की। उस चमत्कारिक पुस्तक को उल्ट पल्ट कर राजा ने तीव्र दृष्टि से देखने पर भी एक भी अक्षर दिखलाई नहीं दिया, तब राजा ने विचारा कि क्या मैं विजाति हूँ। जो इस पुस्तक में एक भी अक्षर नहीं देख पा रहा हूँ। जो हो, यदि इस समय कह दूंगा कि मुझे एक भी अक्षर दिखलाई नहीं पड़ता तो लोग मुझे विजाति समझ मेरा हास्य करेंगे। निन्दा पात्र बनूंगा। यह बड़े कष्ट की बात है। इस रहस्य को छुपा कर रखना चाहिए। लोक निन्दा न हो ऐसा उपाय करना चाहिए। इस प्रकार मन में विचार कर कुलहीनता के भय से सिर हिला कर कहा, "अहो" यह पुस्तक बड़ी प्रभावशाली है। इसके अक्षर अनोखे ललित हैं। इसकी बनावट सुन्दरता कौन वर्णन कर सकता है? वास्तव में यह देवीपुनीत दिव्य ग्रन्थ है। इस प्रकार कहते हुए पुरोहित को पढ़ने के लिए वह पुस्तक दी। पुरोहित जी ने उलट पुलट कर

पन्ने देखें, पर क्या दिखता वे कोरे पत्र थे। पुरोहित बेचारा हैरत में पड़ गया। क्या कहे, यदि सत्य बोलता है तो विजाति-जार की संतान सिद्ध होता है। नीचकुलोत्पन्न सिद्ध होने पर राजा पुरोहित पद से बहिष्कृत कर देगा यह बड़ा भय है। अपनी रक्षा करनी चाहिए इस प्रकार सोच दम्भ से राजा की हां में हां मिलाकर बोला, वाह रे पोथी! अक्षरों की बनावट कमाल की है। ऐसी सुन्दरता अन्यत्र नहीं मिल सकती यह बेजोड़ पुस्तक है। इस प्रकार सकल लोक समूह के समक्ष वह कह रहा था उसी समय अथर्णव व मंत्री वहां आया और बोला-क्या कौतूहल है? राजा ने उसे पोथी पुस्तक दिखलाते हुए कहा देखो, इसके कितने अनुपम अक्षर हैं। ये अक्षर शुद्ध कुल जाति वाले को ही दिखाई देते है। विजाति वाले को नहीं। तब मंत्री ने बड़े आदर से पुस्तक ग्रहण कर हर्ष से उछलते हुए बोला- हाँ-हाँ आप ठीक कहते हैं। यद्यपि उसे कुछ नहीं दिखाई दिया किन्तु किन्तु यह सोच कर कि राजा और पुराहित को तो अक्षर दिखलाई पड़ रहे हैं और मुझे नहीं दिखते तो मैं विजाति ठहरा। यह देव वाणी मुझे प्रत्येक कुलहीन घोषित करती है, हो सकता है कामांध हो मेरी माँ ने पर पुरुष सेवन किया होगा। पर इस निंद्य कर्म को प्रकट करूं। बात सत्य प्रतीत होती है। क्योंकि मैं कुकर्मी हूँ। मैंने महीपाल की प्रिया को विकार दृष्टि से देखा और महीपाल को समुद्र में गिराया यह दिव्य पुस्तक मेरे और मेरे कुल के दुराचार को प्रकट प्रत्यक्ष स्पष्ट दिखा रही है। राजा यदि मेरा भेद जानेगा तो मुझे नीच समझ कर सर्वधन हरण कर राज्य से अपमानित कर निकाल देगा। इसी विचार से वर्णों की अत्यंत प्रशंसा करने लगा। इसी प्रकार अन्य सामन्तादि भी अपनी नीचता के प्रकट भय से उस पुस्तक की वर्णमाला का असत्य गुणगान करने लगे।

अब मंत्री विचार करता है कि मध्य स्थित स्त्री मेरी है यह राजा से कहूँ या नहीं कहूँ। पहले देखूं कि यह निमित्त ज्ञानी क्या कहता है? निमित्त का फल सुनकर ही जैसा होगा प्रकट करुंगा। ऐसा विचार कर मौन ही रहा।

पृथ्वीपति ने विनयपूर्वक कुब्जक से प्रार्थना की कि हे विद्वद्वर पुस्तक की महिमा तो परिपूर्ण देखी और जानी अब इन तीनों को वचनालाप कराओ। राजा की प्रार्थना सुन कुब्जक महीपाल बोला, ठीक हैं, मैं अवश्य इनको वचनयुक्त करूंगा। "देवाधिदेव अर्हन्त प्रभु तीनों लोक के नाथ को प्रथम मेरा नमस्कार हो," इस प्रकार उच्चारण कर पुस्तक हाथ में ले ली भलीभांति बांचने का अभिनय करता हुआ पढ़ने लगा। अहो, राजन् सावधानी से सुनों।

अवन्ती नगरी में राजा नृसिंह है। उसका प्रिय पुत्र महीपाल था। नृप के द्वारा अपमानित किये जाने पर अपनी प्रिया सोमश्री को साथ ले भृगुकच्छ नगर में आया। पुनः कटाह द्वीप जाने की इच्छा से प्रिया सहित जहाज में आरुढ़ हुआ। जहाज चला, दैवयोग से वायु विपरीत चली। समुद्र की तरंगों से तडित जहाज फट गया। खण्ड-खण्ड हो गया। हे राजन्! आगे का वृतान्त कल कहूंगा। इतना सुनते ही सोमश्री अधीर हो उठी, यह कल "मेरे पति का समाचार सुनाएगा तो मैं आज ही क्यों न पूछ लूँ!" ऐसा सोचकर तुरन्त कुब्जक को प्रणाम कर हाथ जोड़ कहने लगी, हे सुन्दर! मुझे पर दया कर बतलाओ "मेरा प्रिय महीपाल जीवित है या मर गया?" कुब्जक हंस कर राजा से बोला- हे राजन्! देखो, मेरी विद्या का सामर्थ्य एक तो बोली। "प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणं" राजा विजितारि उत्सुक हो कहने लगा, हे भव्य! इन दोनों को भी वाचाल करो। तब कुब्जक बोला सुनो-

वह महीपाल समुद्र में गिरा, एक फलक उसे मिला, उसी के सहारे समुद्र पार किया। कटाह द्वीप के रत्नपुर नगर में पहुंचा। वहां रत्नों की परीक्षा कर गान विद्या के बल से मदोन्मत हाथी को वश में किया। राजा ने प्रसन्न हो अपनी सुन्दर सुकुमारी पुत्री चन्द्रलेखा का विवाह उसके साथ कर दिया। कुछ दिन सुख से भोगकर राजाज्ञा से चन्द्रलेखा प्रिया और अथर्णव मंत्री को साथ ले जहाज से प्रस्थान किया। अब आगे वृतान्त

प्रातः दूसरे दिन सुनाऊँगा। इस प्रकार कह कर चुप हो गया। यह समाचार सुनकर चन्द्रलेखा डगमगा गई वह विचारने लगी, इस कुब्जक ने वृतान्त तो मेरे पति का ही कहा है। यह आगे की बात भी जानता होगा। आज ही पूछ लेना चाहिए। कुब्जक के उठने के पहले ही चन्द्रलेखा बोली, हे निमित्तज्ञ! ज्योतिषी! महाराज! उसके आगे क्या हुआ? मुझे शीघ्र ही बतलाइये? हे महाज्ञान निधि मुझ अबला पर दया कर मेरे पति का वृतान्त बतलाइये कि मेरा प्राणप्रिय जीवित है कि नहीं।

कुब्जक राजा से बोला, देखो मेरी करामात दूसरी को भी बुलवा दिया। अब देखों तीसरी को भी बुलवाता हूँ। जब अन्धकार को चीरता जहाज रात्रि में चला जा रहा था, अपनी प्रिया चन्द्रलेखा सहित सुखोपभोग कर राजकुमार महीपाल निद्रादेवी की गोद में सो गया। तब दुष्ट दुराचारी अथर्णव मंत्री ने उसे उठाकर समुद्र के अगाध जल में फेंक दिया। एक "मगर" तैरता हुआ मिल गया। वह उछलकर उसकी पीठ पर बैठ पार होकर सिंहल द्वीप में आया। यहाँ तापस कन्या के साथ विवाह किया। उसे साथ लेकर इस नगरी में आया। यहीं किसी वृद्धा स्त्री के घर अपनी प्रिय शशिप्रभा को छोड़ नगर देखने के लिए आया। वहां मार्ग में अथर्णव मंत्री को देखा। आगे का वृतान्त कल कहूँगा। यह कहकर मौन हो गया। तब तीसरी पत्नी शशिप्रभा बोली- हे देवज्ञ! आगे क्या हुआ सा बतलाओ?

इसी मध्य विजितारि राजा विचारने लगा "अथर्णव तो यही है क्या? यह भी सागर तिर कर आया है? अथवा एक नाम के कई व्यक्ति हो सकते हैं। यह तो सज्जन प्रतीत होता है और कोई दूसरा अथर्णव हो सकता है।" विचार कर मौन ही रहा।

इधर अथर्णव विचारने लगा चन्द्रलेखा ने जो कुछ पूछा है, उसे यदि कुब्जक ने राजा को बतला दिया तो मेरा सारा भंडाफोड हो जायेगा। और मेरा दुष्कृत प्रकट होगा। इस समय न तो मैं चन्द्रलेखा को कुछ कह

सकता हूँ। और न कुब्जक को ही रोक सकता हूँ। यह महासंकट आया है। "इधर गिरुं कुंआ, उधर पड़ूं खाई" कहीं ठिकाना नहीं है। राजा मेरा दुराचार प्रकट जान मेरी सम्पत्ति तो लेगा ही निन्दक भी बनूँगा। यदि राजा बिगड़ा तो प्राण दण्ड भी दे सकता है। इस समय "प्राण माल सब संकट में है।" अथर्णव किं कर्तव्य विमूढ़ हो गया। फिर सोचा आगे सुनना चाहिए कि क्या कहता है कुबड़ा। अब भाग भी तो नहीं सकता हूँ। सुनूं इसके निमित्त ज्ञान का अन्त, पीछे भी भाग जाऊँगा? तर्क-वितर्क से व्याकुल अथर्णव की विचित्र दशा थी। असमंजस में पड़ा था। सोच-विचार कर वहीं बैठा रहा।

कुब्जक ने राजा से निवेदन किया हे भूपाल मैंने तीनों नारियों को बुलवा दिया। आप अपनी घोषणा के अनुसार एक लाख दीनार दिलाइये। अवलिपाल बहुत प्रसन्न हुआ। अथर्णव मंत्री को आज्ञा दी है। सचिव! "एक लाख से अधिक दीनार इस निमित्तज्ञनी को दो।"

उस समय चन्द्रलेखा विचारने लगी, "हाय मैं अवसर चूक गई। मैंने इस दुष्ट अथर्णव का भेद राजा से प्रकट नहीं किया? इस समय इस दुराचारी का निग्रह नहीं कराया। इस पापात्मा को पूर्व पुण्य शेष था जो काल के गाल से निकल गया। अब क्या हो सकता है? खैर पतिदेव का मिलन ही हमें श्रेष्ठ है। यदि ऐसा होगा तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगी।" इस प्रकार संतोष धारण कर मौन रही। उधर राजा विजितारी उठकर अपने महल की ओर गया।

इधर मंत्री अपने सौभाग्य की सराहना करने लगा। अहा, मैं कितना पुण्यवान हूँ कि आज मृत्यु पर विजय पायी। न तो राजा ने ही अथर्णव के विषय में कुब्ज़क से पूछा और न इस विशेषज्ञ कुब्जक ने राजा को आगे की घटना कही। किन्तु अब विचारणीय प्रश्न है। कि कहीं राजा ने इस कुब्जक को एकान्त में बुलाकर पूछा तो क्या होगा? मेरा दुराचार प्रकट हुआ तो हर प्रकार से मेरी क्षति है-नाश है। यह कुब्जक अवश्य भेद

खोल देगा। इसलिए भेद प्रकट होने के पूर्व ही किसी उपाय से इस कुब्जक का प्राण रहित कर देना चाहिए। इसकी मृत्यु से राजा कुपित भी होगा तो क्या ? मेरे पास अटूट धनराशि है। बहुता-सा धन देकर राजा को प्रसन्न कर लूंगा। फिर राजा तो कानों से शासन करते हैं आंखों से नहीं। मैं अपनी वचन कला से भी राजा का स्ववश कर सकता हूँ। उस ईष्यालु घातक ने उसी समय बहुत से राजसेवकों को बुलाया और कहा देखो अभी यह कुब्जक राज मन्दिर की ओर अपना पारितोषिक (इनाम) लेने जायेगा। सो तुम लोग एक साथ मिलकर इसका काम तमाम कर देना अर्थात "इसे जान से मार देना।" सेवकों को इस प्रकार आज्ञा देकर उसने बगुला भक्ति दिखलाते हुए कुब्जक से कहा-"प्रिय मित्र! आपके निमित्त से मैं बहुत खुश हूँ। मुझे अपार हर्ष है । अतः आपको राज मन्दिर की तरफ से तो एक लाख दीनार दूंगा ही मेरे घर से भी बहुत कुछ आपको भेंट करना चाहता हूँ।" इस प्रकार कह "विषकुम्भ पयोमुख" अथर्णव अपने घर गया।

कुब्जक विचारने लगा यह अथर्णव महा कपटी है। विश्वासघाती का कपट शीघ्र नहीं जाता। इस पाखण्डी का कितना ही कुपरिचय तो राजा को करा दिया जो कुछ बचा है उसे भी अवसर पाकर प्रकट के साथ करुंगा, यद्यपि सज्जन बुद्धिमान सरल से सरल परिणाम रखता हूँ किन्तु कपटी "शठं शाठयं समाचरेत्" करना पड़ता है।

राज मन्दिर के चारों ओर शस्त्रास्त्र लिए सेवक जन तैनात हैं। किसी के पास भाला है तो किसी के हाथ में कुन्तल, मुग्दर इत्यादि। सब एक टक से कुब्जक का मार्ग देख रहे हैं। इसी समय लीला पूर्वक गमन करता हुआ वह कुब्जक वहां आया। सरल चित्त। पञ्च णमोकार मंत्र का जाप करता पञ्च परमेष्ठी का ध्यान करता हुआ चला जा रहा है। आदीश्वर प्रभु का ध्यान और उनकी शासन देवी का स्मरण करता हुआ ज्यों ही राजमार्ग में पहुंचा कि पूर्व तैनात भृत्यों ने चारों ओर से उसे घेर लिया। मारो, पकड़ो। वह आया, यह कहते हुए उस पर प्रहार करने लगे।

उस समय कुब्जक ने अपनी दिव्य यष्टी-लकड़ी को सम्भाला और एकाकी अकेले ने ही सबको मार भगाया। जिस प्रकार शेर की गर्जना सुनकर वन के गीदड़ श्रृंगाल भागे हों। कितनों को घायल किया, कितने ही प्राण रहित हो गये। किसी का सिर फोड़ा, किसी की टांग तोड़ी, किसी का हाथ, किसी की नाक तो किसी का कान काट गिराया। सबका शरीर छिन्न-भिन्न कर दिया। रक्त से लथ-पथ योद्धा मंत्री के पास पहुँचे। चिल्लाते हाय-हाय करते गिडगिड़ाते सुभट जन कहने लगे "अहो मंत्रिन्, हमें उस कुब्जक को मारना तो दूर रहा पकड़ भी नहीं सकते। उसके मारने की क्या बात हम स्वयं ही प्राण बचाने में असमर्थ हैं। हमारी दुर्दशा प्रत्यक्ष है। आप जो उचित समझो करो। हम मरने को उसका सामना नहीं करेंगे।

इधर कुब्जक मन्दिर में लौट आया। उसी समय तीनों रानियों ने दौड़कर उसके पास आयीं। हाथ जोड़ विनयपूर्वक कहने लगी। हे निमित्त ज्ञानिन् आप हमारे पति का सर्व सत्य वृत्तांत कहिये। हमारा प्राणनाथ जीवित है या मर गया? आपके वचनानुसार हम यथायोग्य क्रिया करेंगी। आप समाधान पूर्वक कहिये हमारा जीवन-मरण पति के साथ है। सतियों की यही रीति है, नारी का यही धर्म है, धर्मानुकूल विवाहिता पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष का सेवन नहीं करती। पति जीवित है तो उसके साथ सुख-दुख का अनुभव करती है। और मर गया तो शील संयम तथा मरकर परलोक की सिद्धि करती हैं। अतः आप जैसा निर्णय देंगे हम वैसा ही करेंगी। इस प्रकार तीनों के दीन वचन सुन, पति भक्ति में प्रगाढ़ देखकर कुब्जक ने अपना असली रूप प्रकट किया। तीनों रानियां प्रीतम को देख, हर्ष से रोमांचित हो गईं। आनन्द से विभोर हो उठीं। मानों चकोरी को सूर्य मिला, कुमुदिनी को चांद मिला हो। मयूरी मेघ को पाकर और साधु समाधि को प्राप्त कर जैसे हर्षित होता है, उसी प्रकार वे तीनों प्रीतम का दर्शन पाकर हर्षित हुईं। हर्षातिरेक से कंठ गद्गद् हो गया, प्रेमाश्रुओं की झड़ी लग गई, आनन्द से गात्त पुलकित हो गया न बोल

पा रहीं थी, न कुछ करना ही सोच सकतीं थी। इतने ही में बाहर से कुछ शोर-गुल सुनाई दिया।

अरे, यह क्या? ठीक है यह दुष्ट अथर्णव है क्रोध से लाल, झल्लाता हुआ चला आ रहा है। महीपाल ने तुरन्त अपना रूप बदला। कुब्जक अब सामने था। हाथ में एक मात्र लाठी थी। मंत्री की प्रेरणा से सेवकों ने चारों ओर से घेर लिया। नाना आयुधों से घोर युद्ध करने लगे। स्वयं अथर्णव भी भंयकर भुजंग सदृश हुंकारता उस पर झपटा। अकेले महीपाल ने लाठी के बल पर उसे परास्त किया। सबने आयुध डाल दिये। बहुत काल तक मंत्री के साथ युद्ध कर जीवित बांध लिया। जिस प्रकार चोरों के समूह को लौह श्रृंखला से जकड़ कर जेलखाने में पट के वैसे सर्व शरीर बन्ध युक्त कर उसे उन तीनों सुन्दरियों के समीप डाल दिया।

मंत्री के युद्ध करने और बन्धन में जकड़े जाने की बात राजा के समक्ष पहुँच गई। राजा आश्चर्य चकित हो गया। हैं ! यह क्या हुआ? क्यों हुआ? कैसे हुआ? इत्यादि प्रश्न एक साथ मस्तिष्क में उठे। प्रश्नों का समाधान और अपने अथर्णव मंत्री का दुराचार ज्ञात कर राजा सावधान हो गया। वह निमित्तज्ञानी से क्षमा याचना करने के लिए निकल पड़ा।

ओ हो! अकेला महाबलवान है। इससे बैर विरोध करना उचित नहीं इसके पास दैवी शक्ति है। प्रत्यक्ष देव जिसका किंकर हैं उसके बल की क्या सीमा? साक्षात् चमत्कारी पोथी है। इस पुस्तक के सामने औषधि मन्त्र-तन्त्र आदि सभी व्यर्थ हैं। देवत्व शक्ति का सामना भला कौन कर सकता है? यह सामर्थ्ययुक्त है। शक्तिशाली से विरोध करना उचित नहीं है। जो बुद्धिमान विवेकी स्वहित चाहने वाले पुरुष हैं, वे मंत्र वादी, परिपूर्ण निमित्तज्ञ और वैद्यराज, इन्हें कोपयुक्त नहीं करते हैं। इस प्रकार विचार कर राजा विजितारि अपने कुटुम्ब परिवार को साथ लेकर कुब्जक महोदय के पास गया। विनम्रता से राजा ने पूछा-हे विशेषज्ञ! यह क्या माजरा है? मंत्री ने क्या अपराध किया? आपने क्यों इसे बन्दी

बनाया ? इसने आपके साथ दुर्व्यवहार क्यों किया ? कृपया सर्ववृतान्त मुझे बताइये। यह सुनकर कुब्जक ने शान्त भाव से उत्तर दिया, राजन्! राजन्! यह सम्पूर्ण वृतांत मुझसे पूछने की आवश्यकता नहीं, आप इन तीनों देवियों (रानियों से पूछिये, वे आपको सकल रहस्य स्पष्ट सत्य-सत्य बतलायेंगी।) यह सुन, राजा ने अत्याग्रह से उन तीनों महा-सतियों से पूर्व का सम्पूर्ण चरित्र वर्णन करने की प्रार्थना की।

तीनों रानियां हर्ष-विषाद मिश्रित शंकाकुल हो राजा से बोली-हे नृपति! यह कुब्जक हम तीनों के पति हैं। यह इनका यथार्थ रूप नहीं हैं। मंत्रबल से इन्होंने यह भेष बनाया है। यह अथर्णव मंत्री महादुराचारी, पापी, लम्पटी, विषयान्ध है। इसने जहाज से हमारे पति को समुद्र में फेंक दिया और चन्द्रलेखा प्रिया पर आसक्त हो इससे दुराचार करना चाहा। यह सती पति मिलन की आस से यहाँ आई। यह हमारा प्राणनाथ दीर्घायु होने से हमारे पुण्य योग से सागर पार कर यहाँ आये। अथर्णव मंत्री को देख कर कुब्जक का रूप धारण किया। मेरा भेद दुराचार प्रकट होगा। इस आशंका से इस विपरीत बुद्धि मंत्री ने मारने का षडयंत्र किया। अब यह कुब्जक इस अधम दुष्ट को बांध कर हमारे पास लाया। यह अनहोना वृतान्त सुनकर राजा ने परम आश्चर्य किया। पुनः कुब्जक को अपने असली रूप प्रकट करने की प्रार्थना की।

क्षणमात्र में कुब्जक की माया विलीन हुई। उसके स्थान पर सर्वाङ्ग सुन्दर विद्या-बुद्धि सम्पन्न अति मनोज्ञ नाना कलाओं में प्रवीण महीपाल कुमार उपस्थित हुआ। महीपाल को प्रत्यक्ष-समक्ष देख अथर्णव मंत्री का शरीर कांप उठा। कलेजा धक्-धक् करने लगा। हृदय एक साथ धड़का और सहसा सदा के लिए बन्द हो गया। हृदय गति बन्द हो गई।

मृतक मंत्री को देख राजा विजितारि बोला- यह पाप का प्रत्यक्ष फल है। पाप छुपाने से नहीं छुपता। अपितु विशेष भयंकर रूप धारण कर

उपस्थित होता है। देखो, यह पाप के भार से स्वयं दबकर सदा को विदा हो गया, कहा भी है "पाप न छुपे कभी छुपाये, आग न छुपे रूई लपटाये।" एक ओर यह पाप का दुष्परिणाम है और दूसरी ओर पुण्य की महिमा है कि मृत्यु की गोद में भी अमन चैन से क्रीड़ा कर अपना मनोरथ सिद्ध कर रहा है। उग्र पाप पर तीव्र पुण्य की विजय हैं। नाना प्रकार से पुण्य पाप का वर्णन कर राजा ने प्रसन्नता से मंत्री का धन और घर महीपाल को प्रदान किया। अपनी तीनों प्राण प्रियाओं के साथ महीपाल वहाँ सुख से रहने लगा, ये तीनों बल्लभाऐं मानों तीन शक्तियाँ हैं। इनके योग से महीपाल उसी प्रकार शोभायुक्त हुआ जैसे तीन शक्तियों से स्वयंभू राजाओं की (जिनके पास भी तीन शक्तियां होती है) १. मंत्र शक्ति, २. उत्साह शक्ति, और ३. बल (सैन्य) शक्ति। महीपाल कुमार ने अपने कला का कौशल, विद्या-बल से राजा विजितारि को रंजायमान प्रसन्न किया। एक दिन राजा ने विचार किया यह पुरुष अति विलक्षण है। इसकी अलौकिक बुद्धि है। यह कला गुण सम्पन्न है। इससे मेरे राज्य की विशेष शोभा होगी। इसके बुद्धि-कौशल की परीक्षा कर इसे मंत्री पद प्रदान करना चाहिए।

महान वही है जो अपने आश्रय रहने वाले को भी महान बना ले। विजितारि राजा विद्या-विज्ञान युक्त था।गुणी और गुणज्ञों का सम्मान करता था। अतः महीपाल के कला-कौशल बुद्धि-कौशल से अभिभूत हो उसकी परीक्षा का निश्चय किया।

सभा भरी हुई है। सभासद् खचा-खच भरे हैं। कुमार भी यथा स्थान आसीन है महाराज आज क्या "विशेष कार्य" उपस्थित करते हैं। सब इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय राजा ने महीपाल कुमार को सम्बोधन कर कहा-हे कुमार! मेरा ऐरावत नाम का यह हस्ती है। तुम इसको तोल कर वजन प्रमाण बतलाओ। भूप के वचन सुन समस्त सभा सन्न हो गई। एक-दूसरे का मुख देखने लगे। सब मौन थे। इस प्रकार के

विषय कार्य में किसकी बुद्धि प्रवेश करती। किन्तु विद्या-निधान विशेषज्ञ महीपाल ने सहर्ष राजाज्ञा स्वीकार की। सर्वजन दांतों तले अंगुली दबा गये। राज स्वयं विस्मय से अभिभूत था। सब परीक्षा परिणाम देखने को उत्कण्ठित थे।

कुमार ने एक सुन्दर और सुदृढ़ नाव मंगाई, हाथी को नाव में सवार किया। नावक को अगाध जल में ले गया। यहाँ नाव का जितना भाग जल मग्न हुआ, उस स्थान पर लकीर निशानी कर दी। नाव को वापिस तट पर ले आया। गजराज को उतार दिया। पुनः नाव में छोटे-बड़े अनेक पाषण भर दिये, नाव को उसी स्थान के जल में ले गया, जब तक निशान पर्यन्त पानी आया। इस प्रकार निर्धारण कर नाव वापिस ले आया। पत्थर निकाले। उनको तौलकर हाथी का वजन निर्धारित किया। राजा को जाकर गजराज का तौल बतला दिया। राजा ने अति हर्षित हो महीपाल का बहुमान कर वस्त्राभूषण इनाम में दिये।

एक दिन विजितारि राजा ने सरोवर के मध्य एक उत्तुंग पाषाण स्तम्भ गाढ़कर समस्त सभासदों को कहा कि जो पुरुष सरोवर के तट पर खड़ा रहकर इस स्तम्भ को रस्सी बांधेगा उसे मैं अपना मंत्री बनाऊँगा। सभी को राजमंत्री पद की अभिलाषा थी सबके मुंह में पानी आ गया परन्तु शर्त इतनी जर्बदस्त थी कि सब मन मसोस कर रह गये। सभी विकल्पों में फंसे किसी का उपाय नहीं चला। कुमार हताश नहीं हुआ। होता भी क्यों "बुद्धिर्यस्य बलं तस्य" बुद्धिबल के समक्ष कोई कार्य असम्भव नहीं है।

महीपाल ने सरोवर के तट पर मध्य के स्थम्भ के बराबर का दूसरा स्थम्भ उसके शिखर पर रस्सी बंधवाई। उसके छोर-किनारे को लेकर तेजी से सरोवर के चारों ओर घूम गया। अवद्ध बे रोक-टोक बुद्धि संचार वाले महीपाल ने तट पर हते हुए ही जलस्थ स्थम्भ को रस्सी

बांध दी। राजा ने इस कौतुक से प्रसन्न हो महीपाल कुमार को सर्व-सम्मति से मंत्री पद पर आसीन किया।

मंत्रीपद महोत्सव मनाया गया। राजा प्रजा ने उत्सव में भाग लिया। पश्चात् महीपाल कुमार भी अपने पूर्वभव का पुण्यभोग का फल आनन्द से भोगने लगा। राजा भी नये मंत्री की कला चतुराई से संतुष्ट हुआ। परिजन-पुरजन सभी को महीपाल ने अपने गुणों में अनुरक्त कर लिया, अनेकों उपायों से उसने अपनी सीमा के कई राजाओं को जीत कर अपने अधीन कर लिया।

वह राजा के षट्गुण १. संधि २. विग्रह ३. पान (यान) ४. आसन ५. द्वैग्धीभाव ६. संस्थान का ज्ञाता तथा १. मंत्रशक्ति २. बलशक्ति और उत्साह शक्ति का जानकार था। सामान्य जनों की बुद्धि से अगम्य बुद्धि वैभव वाले उस महीपाल ने कभी युद्ध में पराजय नहीं देखी। सतत विजयी हुआ। महान बड़े-बड़े बलशाली राजाओं को परास्त कर विजितारि के आधीन कर दिये। सभी के साथ नेक-उचित व्यवहार करता था। इसका नाम सुनकर ही राजा इसके आधीन हो जाते थे। यह प्रजा के हृदय का शासक बन गया।

राजा, महीपाल कुमार की राज्यनीति देखकर मुग्ध था, राज सभा में प्रशंसा किये बिना नहीं रहते। देखो इस कुमार की शक्ति और युक्ति कितनी प्रबल है? समस्त प्रतिकूल नृपति अनुकूल कर दिये। यह कोई महान व्यक्ति है रूप सौन्दर्य भी कम नहीं है। उत्तम कुलोत्पन्न नर रत्न मालूम पड़ता है। अतः मेरी कन्या सौभाग्य सुन्दरी के अनुकूल वर रत्न है। कन्या के साथ करमोचन समय में अति वैभवपूर्ण राज इसे दूँगा।

दृढ़ निश्चय कर राजा ने महीपाल से जाति कुल वंश परम्परा पूछी। अनुकूल पाकर उसने बड़े धूमधाम से वैभव के साथ अपनी कन्या रत्न जैनागम विवाह पद्धति अनुसार महीपाल को प्रदान की। मानों

रामचन्द्र व सीता जी का विवाह हुआ हो विवाह विधि सम्पन्न होने के अनन्तर कर-मोचन (हथलेवा) के समय विजितारि ने अति हर्षोत्फुल्ल हो अपना आधा राज्य भेंट किया। राजा महीपाल भी चारों प्रियाओं के साथ सुख से राज्य भोग सेवन करने लगा। जैसे महाराज दशरथ अपनी चार समुद्र समान रानियों के साथ आनन्द सागर में मग्न हों। महीपाल राजा नाना भोग भोगता हुआ भी अपने धर्म कृत्यों के सम्पादन में विलम्ब नहीं करता था। षटकर्मों का पालन करना उसका नियमित रूप से चलता रहा।

निरुत्सुक कुमार एक दिन अपने राज्य वैभव को देख कर विचार मग्न हो गया। सम्पत्ति वही सार्थक है जिसे स्वजनों के बीच भोगा जाय और परिजनों को देखने में आवे। मैंने यह प्रचुर लक्ष्मी निज बाहुबल और विद्या बल तथा कला शक्ति से उपार्जित की है। इसे मिथिलापुरी जाकर राजा नृसिंह को शीघ्र ही दिखाना चाहिए। पण्डितों का कथन है कि विभूति स्वजन कुटुम्ब परिवार मित्रादि और परिजन-शत्रु आदि के देखने में न आवे वह धन सम्पदा किस काम की ? क्योंकि प्रशस्त लक्ष्मी को देख कर स्वजन सन्तुष्ट और परिजन विषाद युक्त होते हैं। अस्तु, मुझे अपनी जन्मभूमि में अवश्य शीघ्र जाना चाहिए।

कुमार ने अपना मन्तव्य अपने ससुर विजितारि को ज्ञात कराया। राजा हर्ष विषाद के झोंके में पड़ गया। किन्तु कर्तव्य समझ कर अपनी अनुमति प्रदान की। नाना प्रकार की सामग्री इकट्ठी कर बड़े-बड़े वीर सामन्त योद्धा साथ में देकर हाथी, घोड़े, रथ, पयादे चतुरङ्ग सेना के साथ शुभ मूर्हूत, शुभ लग्न में रत्नसंचयपुर से विशालपुरी के लिए कुमार का प्रस्थान कराया । दास-दासी वस्त्रांलकार सभी प्रचुर मात्रा में कुमार को भेंट किये गये।

महीपाल अपनी विभूति का निरीक्षण करता हुआ रानियों सहित खड्डा (खटिया) पर आरुढ़ हो गया। आकाश मार्ग से गमन करने लगा।

मार्ग में अनेकों राजा, कुमार महीपाल की युद्ध की कला, वीरता और बुद्धिमत्ता सुनकर भेंट ले ले आये। "जैसे अनेकों नदियां सागर में मिलकर उसकी महिमा बढ़ाती हैं।" उसी प्रकार राजा जन दल-बल के साथ कुमार महीपाल की सेना को बाढ़ के समान वृद्धिंगत करने लगे। वृद्धि सहित महीपाल क्रमशः मालव देश में पहुंचा। अति रमणीक प्रचुर जलयुक्त सुन्दर भूमि में सेना का डेरा कराया।

मार्ग श्रम दूर कर महीपाल ने श्री जिन भगवान का स्मरण किया। भोजनादि से निवृत्त हो स्वस्थ चित्त से विचार कर एक कुशल दूत को बुलवाया। भली प्रकार से नीति समझाकर नृसिंह राजा के पास भेजा।

दूत भी निर्भय वेग गति से नृसिंह राजा के पास पहुँचा। सम्यक् प्रकार नमस्कार किया। सभा के मध्य बोला-हे राजन् जिस महीपाल को आपने धन के अभिमान से राज्य से निकाला था वही महीपाल कुमार अपने कला-कौशल से प्रचुर बल सम्पदा के साथ यहां आया है। अतः हे राजन्! उसके सम्मुख जाकर योग्य पाहुण गति (अतिथि सत्कार) करो। यदि स्वागत करने की इच्छा नहीं हो तो शीघ्र युद्ध की तैयारी करो। जो तुमने पूर्व में कहा था वही महीपाल ने किया है। अब आपको सबको मिलकर शीघ्र उसका स्वागत करना चाहिए। जैसी प्रीति आपके साथ पहली थी वैसी आज भी दिखायेंगे। इसलिए आपको सम्मुख अविलम्ब जाना चाहिए। भृत्य के विरोध भरे वचन सुनकर राजा नृसिंह क्रोध में भभक उठा, आंखें, मुंह लाल हो गये। सभासदों से बोला-देखो, ओछे पुरुषों का ऐसा ही स्वभाव होता है। कि थोड़ा-सा धन वैभव मिला नहीं कि अहंकार से गर्विष्ट हो जाते हैं। अहंकार से मदोन्मत्त पुरुष विवेकहीन हो गुरुजनों की अवज्ञा से नहीं चूकते हैं। पुनः राजा ने सेवक से कहा? दूत तू शीघ्र जा तेरे स्वामी से कह कि मैं शीघ्र बड़ी सेना के साथ तेरी पाहुनगति करुंगा। रे दूत! "सिंह के आगे सियार कितना बलवान है," गरुड़ के समक्ष सर्प की क्या सामर्थ्य है।" "सूर्य के आगे अंधकार का

समूह कब तक ठहर सकता है?" उसी प्रकार कल का छोकरा महीपाल तेरा स्वामी मेरे समक्ष कब तक ठहर सकता है? जा शीघ्र जा इस प्रकार कोपाकुल हो राजा ने दूत को विदा किया और अति कुपित हो संग्राम के लिए उद्यत हुआ।

युद्ध का समाचार पाते ही स्थिर बुद्धि नाम का मंत्री राजा के निकट आया हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। मंत्री बोला-हे भूपाल यदि मंत्री स्वामी को हितकार वचन नहीं कहे तो वह मंत्री किस काम का? और राजा सावधान चित्त मंत्री की मन्त्रणा नहीं सुने तो वह राजा भी किस काम का? राजा और मंत्री एक विचार होने से राज्य में प्रचुर धन-सम्पदा की वृद्धि होती है और प्रजा सुख-शान्ति से निवास कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ को अनुक्रम से सिद्धि करती है। मंत्री राजा को हितकर शिक्षा देता है और शिक्षा सुन अनुकूल करती है। मंत्री राजा के हितकर शिक्षा देता है और राजा शिक्षा सुन अनुकूल प्रवर्तता है तो उसका राज्य भण्डार-खजाना अटूट भरा रहता है। सम्पत्ति स्वयमेव चली आती है। भो देव! हे राजन्! असमान के साथ युद्ध करना उचित नहीं। कदाचित् विजय भी हो जाये किन्तु यश नहीं होता। यदि पराजय हो तो जगत् विख्यात् यश शीघ्र नष्ट हो जाता है। भो नाथ! महीपाल अतिशय बलवान है। महान रणवीर धीर है। उसके पास देवीपुनीत दिव्य-अतिशय है। सुना जाता है कि जितशत्रु और अथर्णव मंत्री को भी उसने क्षण मात्र में जीत लिया संग्राम में महीपाल का पराभव (पराजय) करना सरल नहीं है। उसके पास आकाश गामिनी विद्या भी है, हे राजन् आप विचारिये, जो एकाकी विदेश में जाकर अल्प समय में विख्यात हो गया, अनेकों राजाओं को जीता, इतनी विपुल धनराशि एकत्रित की, विशाल सेना समन्वित कर आया उसके बल-वीर्य, बुद्धि-पराक्रम का क्या ठिकाना है? अतः सहसा उसके साथ युद्ध करना उचित नहीं। मेरी बुद्धि से आप प्रथम अपने राज्य की सीमा पर शासन करने वाले जय नामा राजा के पास आदेश पत्र दें

कि तुम अपनी शक्ति भर महीपाल का सामना करो। राज्य की सीमा में उसके प्रवेश को निवारण करो। इस प्रकार गुप्त रूप से उसके बल पराक्रम की थाह मिल जायेगी। आगे जय पराजय देख उसके साथ सन्धि-विग्रह करना योग्य है।

दूरदर्शी राजा नृसिंह ने मंत्री की बात को ध्यान से सुना। वास्तव में उसका कथन तथ्यभरा पथ्ययुक्त, समयानुकूल है यह निश्चय कर एक कुशल दूत शीघ्र राजा जय के पास भेजा।

पवनगति से बचोहारी (दूत) राजा जय के पास पहुँच गया। नृसिंह राजा का आदेश पत्र दे नमस्कार कर खड़ा रहा। राजा ने पत्र को देखा और दूत को उचित इनाम दे विदा किया। राजाज्ञानुसार अपना दूत बुलाया और महीपाल के पास भेज दिया। दूत ने महीपाल से प्रणाम कर कहा-हे नरेश! मेरे स्वामी ने आपको आज्ञा दी है "आप मेरी सीमा पर डेरा नहीं डालें आप अन्य मार्ग से चले जाइये।" दूत के वचन सुनते ही महीपाल मुस्कराया। उपेक्षा से बोला, रे भृत्य! तेरा स्वामी जय मानी पुरुषों के मध्य महामानी है। अति उद्धत है। अरे क्या "शियार के भय से शेर अपना मार्ग बदलता है? "जूं के भय से क्या कोई बुद्धिमान अपना वस्त्र छोड़ देता है?" कुत्तों के भोंकने से क्या हाथी गमन बन्द कर देता है? हे भृत्य! तेरा स्वामी मेरे बल और पराक्रम को नहीं जानता है। इसलिए तुझे यहाँ भेजा है। तू कह देना कुछ बल पराक्रम हो तो शीघ्र सेना लेकर मेरे सम्मुख आवे, देर न करे। पुरुषार्थी पुरुष व्यर्थ बक-बक नहीं करते। कर्तव्य करते हैं। तुम अविलम्ब जाओ। दूत द्रुत गति से चला गया।

रणभेरी बजी। सेना सजी। बिगुल बजा। राजा चला। उधर नृसिंह भी सेना ले प्रच्छन्न रूप से उनका बल पराक्रम देखने आया। महीपाल भी अपनी विशाल सेना ले जय के नगर में आ धमका। दोनों स्वाभिमानी आपस में भिड़े । रणभेरी बजते ही दोनों ओर के सुभट हर्षायमान हुए।

कायरों के हृदय कांपने लगे। शूरवीर आगे बढ़े कायर पीछे हटने लगे। जो भी हो, दोनों सेनाऐं रणभूमि में आ कर युद्ध के लिए तत्पर हुईं।

रथों से रथ, घोड़ों, गजों से गज, सवारों से सवार और पैदलों से पैदल भिड़ गये घोर युद्ध होने लगा। चारों ओर धूल छा गई अन्धकार व्याप्त हो गया। रक्त प्रदाह बह चला। किसी का सिर किसी का धड़ किसी का हाथ किसी का पांव रक्त प्रवाह में तैरने लगे। कहीं हाथी चिंघाड़ते हैं तो कहीं उच्च स्वर से घोड़ें हींस रहे हैं। वादियों के नाद के साथ वीरों की आवाज गूंज रही है। पकड़ो-मारों, इधर आया, उधर गया रथ इधर चलाओ, अरे घोड़े की बांघ सम्भालो, भागता क्यों है? ठहर जा, देख-देख अभी तुझे स्वर्ग पहुँचाता हूँ, इत्यादि सुभटों की ध्वनियाँ गरज रहीं हैं, कोई वीर कायर की हंसी कर रहा है, कोई तीर चला रहा है, कोई तलवार का वार कर रहा है, सभी अपने-अपने अनुकूल, कुन्त, भाला, गदा आदि शस्त्रास्त्र सम्भाल रहा है। कई सुभटों शत्रु को जीत कर प्रसन्न हो रहे हैं। इस समय जय राजा के वीरों ने महीपाल की सेना हटाई पीछे खदेड़ दी। अपनी सेना को पीछे हटते देख महीपाल स्वयं उठा। दिव्य यष्ठी (लकड़ी) सम्भाली, दिव्य खटिया पर सवार हुआ। आकाश में आ डटा। सर्व शस्त्र धारण करने वाले शत्रुओं से युद्ध प्रारम्भ किया क्षणमात्र में सारे सुभट भाग खड़े हुए। जैसे तीव्र पवन से घन समूह (बादल) विलीन हो जाता है। रथ, घोड़े, पयादे कोई भी महीपाल के वेग को रोकने में समर्थ नहीं हो सका। भला प्रलय कालीन वायु से उत्थित सागर की अविरल उठती तरङ्गों को कौन रोक सकता है? वर्षा के मेघों की झड़ी समान बाण-वर्षा से जय राजा की सेना भागने लगी। बड़े-बड़े रणवीर योद्धा युद्ध का अभियान छोड़ दशों-दिशाओं में तितर-बितर हो गये। बड़े-बड़े विशाल गजेन्द्र यष्टी के प्रहार से अपने-अपने सवारों को गिरा निर्ग्रन्थ साधु समान स्वच्छन्द विचरण करने लगे।

रथों के पहिये निकलकर लुढ़कने लगे और सारथी जान लेकर भाग खड़े हुए राजा भागते सुभटों को भय और ताड़ना दिखाता, उन्हें युद्ध में स्थिर करता आश्वासन देता। स्वयं रणभूमि में आया महीपाल भी सावधान हुआ। इन दोनों में तुमुल युद्ध (घोर युद्ध) हुआ। गगनाङ्गण में देव देवांगनाऐं भी इस युद्ध से चकित हो गई।

महीपाल ने आते ही प्रथम जय को शस्त्र हीन कर दिया। दिव्ययष्टी के प्रहार से उसके इन (हाथी) का गन्डस्थल विदीर्ण किया। रक्त मिश्रित मुक्ता विखर गये गजराज भी आहत हो धैर्य रहित हुआ। थामते-थामते भी ठहर नहीं सका। राजा सहित भागा, राजा जय को भागता देख बाकी सेना भी भाग चली। "सूर्यास्त होने पर भला उसकी किरणें कैसे रह सकती हैं?" जय राजा और उसके सभी वीर भाग गये। महीपाल की सेना में विजय के नगाड़े बजने लगे। जय जयकार गूँजने लगी।

राजा नृसिंह भी इसकी बेजोड़ सामर्थ्य, अद्‌भूत पराक्रम देखकर प्रच्छन्न ही वापिस उज्जयिनी नगरी में आ गया। मनमें विचारने लगा। वास्तव में कला-विज्ञान विशेष महत्वपूर्ण है। विद्या-गुण महान् है? मैंने इसे कला-प्रेम के कारण ही निकाला था। आज यह अपने विद्या-कौशल से कला-चातुर्य और विज्ञान-बल से एक विशेष शक्तिशाली धन वैभव युक्त विपुल परिवार वन्त होकर आया है। जो कुछ भी हो, अब मुझे इसे अपने पास रखना चाहिए। कला-चातुर्य से राज्य की शोभा है। इसकी सामर्थ्य अद्वितीय है। मैं लक्ष्मी का कोरा अभिमान करता था परन्तु यह अत्यल्प समय में ही अतुल वैभव सम्पन्न हो गया। वह भी एकाकी अन्जान विदेश में जाकर अब इस कलावान का उचित सत्कार कर अपने राज्य में रखना चाहिए। इस प्रकार विचार कर एक योग्य चतुर बुद्धिमान अपना प्रधान मंत्री उस कुमार के पास भेजा।

कुमार उज्जयिनी की ओर प्रयाण करना चाहता था। उसी समय राजा नृसिंह का बुद्धिविधी मंत्री वहाँ पहुँचा। यथायोग्य कुमार को बड़े आदर स्नेह से प्रणाम किया। कुमार ने भी विनय पूर्वक स्थानादि प्रदान कर उसका सत्कार किया। अत्यन्त कोमल उदार और सत् वचनों द्वारा सम्बोधित कर कुमार से कहा—हे महीपाल! मुझे महाराज ने आपके पास सन्धि के अर्थ भेजा है। प्रथम दूत ने आकर आपके साथ जो विग्रह की बात की वह भृत्य की उद्धता है। आप उस पर ध्यान न दें। राजा जय ने आपके साथ युद्ध किया इसमें अपराध नहीं है। वफादार स्वामी भक्त का कर्तव्य स्वामी की आज्ञानुसार चलना है। नृसिंह राजा ने उसे राज्य की रक्षा के लिए ही सीमा पर नियुक्त किया है। अतः आपके प्रभाव से अनभिज्ञ होने के कारण आपके साथ यह अपराध किया। उस सबको क्षमा कर आप प्रसन्न होवें। महाराज आपसे मिलने को अत्यन्त उत्कण्ठित हैं। आपको पहले भी अति स्नेह से देखते थे। अब एक क्षण भी आपको देखे बिना रहने में असमर्थ हैं। आप कृपा कर शीघ्र चलें। सत्पुरुष महान पुरुषों की अवज्ञा नहीं करते। उनके प्रेम का आदर करते हैं बड़ों की इच्छानुसार कार्य कर सुयश प्राप्त करते है। हे कुमार! यदि आप चलने में विलम्ब करेंगे तो राजा स्वयं आपसे मिलने आयेंगे। यह आप जैसे आज्ञाकारी पुत्र के लिए योग्य नहीं। इसलिए अतिशीघ्र प्रस्थान करिये। आप जैसे विनयशील पुरुष का यही कर्तव्य है।

मंत्री के युक्तियुक्त नम्र सरल वचनों से कुमार का हृदय परिवर्तित हो गया। समस्त क्षोभ धुल गया। वह पूर्ववत् ही गुरुवत्सल हो गया। गुणज्ञ पुरुष कषाय बांध कर नहीं रखते। सत्पुरुष-अपराधी अपराध स्वीकार कर ले, इतना ही उनके सन्तोष को पर्याप्त होता है। अस्तु कुमार ने चारों पत्नियों सहित खाट पर आरुढ़ हो उज्जयिनी की ओर प्रस्थान किया तथा समस्त सेना भी भू-मार्ग से चली। महीपाल आकाश मार्ग से जाता हुआ देव जैसा शोभित हो रहा था।

उधर राजा नृसिंह ने सम्पूर्ण नगरी की अद्‌भुत् शोभा करायी। स्वयं परिजन-पुरजन सहित बड़े साज-बाज के साथ कुमार की अगवानी के लिए चला। आकाशमार्ग से आते ही कुमार को देखकर राजा आश्चर्यान्वित हुआ, अहो! कुमार की यह अद्वितीय कला सामर्थ्य विचित्र है! कुमार ने राजा को आते हुए देखा कि तत्काल आकाश से उतरा और पिता के चरणों में विनयपूर्वक नमस्कार किया। राजा ने भी अति स्नेह से गले गलाया। बड़े आदर और उत्साह से नगर में प्रवेश कराया। महारमणीक सर्व-सुख सामग्री से सुसज्जित सतखण महल रहने के लिए दिया। महीपाल अपनी चारों महारानियों से युक्त नाना प्रकार के अद्‌भुत सुखोपभोग भोगने लगा। महीपाल पूर्ववत् ही राजा को नाना विनोद से प्रसन्न करने लगा परस्पर वियोग सहने में असमर्थ हुए धीरे-धीरे समस्त प्रजा कुमार के गुणों पर विमुग्ध हो गई। प्रजा-पालक प्रजावत्सल देखकर राजा ने सम्पूर्ण राजकार्य महीपाल को अर्पित कर दिया। सारा राजकार्य महीपाल ही सम्भालने लगा। इन्द्र समान चारों रानियों के साथ सुखोपभोग करता हुआ भी प्रजा का बराबर ध्यान रखता था, और राजा को भी अपने नये-नये विनोदों के द्वारा रंजायमान करता था। लीला मात्र में बड़े-बड़े शत्रु राजाओं को जीत लिया था। कुमार के पराक्रम से भयभीत होकर कितने ही राजा शरणागत हो गये। निष्कंटक राज्य हो गया।

शत्रुविहीन राज्य हो जाने से प्रजा अमन चैन से धर्मध्यान में लीन हुई। सर्व प्रजा आनन्द से रहने लगी। स्वयं कुमार राजा को नाना क्रीड़ाओं से मुग्ध करने लगा। घुड़सवारी से, कभी वनक्रीड़ा से, कभी उपवन से पुष्प चुनने से, कभी पण्डित गोष्ठी से, कभी कथा उपाख्यानों से, कभी मनोहर द्यूतादि क्रीड़ाओं से रंजित करने लगा। राज्य में सर्व प्रकार से सुख-शान्ति रहने लगी। जिनभक्त महीपाल पर्वादिकाल में विशेष-विशेष पूजा अनुष्ठानों से धर्म प्रभावनादि करते थे, धर्मध्यान सेवन से रत होते थे। सर्वप्रजा धर्म परायण थी। इस प्रकार निर्विरोध रूप से चारों पुरुषार्थ सेवन करने में तल्लीन थे।

राज सभा सजी हुयी थी। राजा, कुमार सहित सिंहासन पर आसीन था। सहसा आकाश से जय-जय शब्द एवं दुंदुभिनाद सुनाई पड़ा। सहसा आकाश की ओर देखा दल-बल के साथ देव देवेन्द्र गण विमानारुढ़ चले जा रहे हैं। तत्क्षण आश्चर्यान्वित हो राजा ने द्वारपाल को बुलाकर दुन्दुभिनाद का कारण पूछा। तब भृत्य हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला— नीरधिप! हे स्वामिन्! आपके उद्यान में स्थित सुधर्मा स्वामी मुनिराज को महाकेवल लब्धि प्राप्त हुई है। अर्थात् केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ है। वहाँ दुन्दुभिनाद हो रहा है और देवों के समूह जिन-वन्दनार्थ जा रहे हैं। इस प्रकार कर्णप्रिय कल्याणकारी वचन सुनकर राजा ने राजचिन्हों के अतिरिक्त सम्पूर्ण वस्त्राभूषण द्वारपाल को इनाम में दिये।

उज्जयिनी नगरी में आनन्दभेरी दिलायी राजा भी महीपाल सहित जिन-वन्दना के लिए चला। नाना प्रकार के सुस्वादु सुगंधित फलों के थाल एवं सुगंधित पुष्प नैवेद्य अनेक मधुर मिष्ठान इत्यादि अष्ट द्रव्य सजाकर अनेकों स्तुति करते वाद्य बजाते हुए लोग जिन-दर्शन को चलने लगे। गंधकुटी के दिखते ही राजादि अपने-अपने वाहनों से उतर पैदल चल कर हाथों में पूजन द्रव्य लिए सभा मण्डप में पहुंचे। जय जयकार करते हुए गंधकुटी में प्रवेश किया जहां पर श्री जिनेन्द्र भगवान सहस्रदल सुवर्ण कमलयुक्त रत्न जड़ित सिंहासन पर चार अंगुल अधर विराजमान थे। राजा नृसिंह, महीपाल एवं अन्य भव्यजनों ने शिर नवा हाथ जोड़कर पृथ्वी पर झुक कर साष्टांग नमस्कार किया। स्तुति कर मनुष्यों के विभाग में एकाग्रचित बैठ गये। सर्व सभा के शान्तचित्त हो जाने पर प्रभु का धर्मोपदेश प्रारम्भ हुआ।

धर्म जीवन का प्राण है। उभय लोक में धर्म ही सुखदाता है। श्रावक धर्म और यति धर्म के भेद से धर्म के दो भेद हैं। उत्तम क्षमादि के भेद से दश प्रकार धर्म है। रत्नत्रय की अपेक्षा ३ भेद वाला है। आत्म स्वभाव की अपेक्षा एक भेदरूप है। धर्म की मूल दया है, प्राणी मात्र का रक्षण करना कषायभाव नहीं करना श्रेष्ठ धर्म है।

"उच्च कुल," "शीलवती नारी" "निरोग शरीर" "प्रबल पराक्रम, पवित्र आचरण, "आज्ञाकारी पुत्र" "हितदर्शन मित्र," "सुख दुःख में समान, भाई" "सज्जन कुटुम्ब वर्ग" आदि सब धर्म के प्रभाव से प्राप्त होते हैं।

श्रावक धर्म का मुख्य अङ्ग श्री जिन पूजा और सुपात्र दान है। अष्टद्रव्यों से भगवान अर्हंत प्रभु की पूजा करना चाहिए। प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य है कि स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन, शुद्ध जल-(दो पट वस्त्र से छानकर) कुएं से स्वयं भर कर लावें। अखण्ड तंदुल (चावल) लेकर धोवे, शुद्ध केशर घिस कर भगवान के चरणों में अंगुष्ठ पर लगावें। अखण्ड पुष्प चढ़ावें-सुन्दर सुगन्धित गुलाब, जुही, केवड़ा, मोगरा, वासन्ती आदि पुष्प भगवान के चरणों में चढ़ाने चाहिए। बरफी, घेवर वावर, फेनी, लाडू, बताशा शुद्ध स्वयं प्रतिदिन ताजा बनाकर चढ़ाना चाहिए। कपूर जलाकर अथवा शुद्ध घृत का दीप जलाकर दीप पूजा करना चाहिए। शुद्ध अष्टांग धूप अग्नि में खेवें। सुपक्व सुगंधित मधुर फल आम, नारंगी, केला, अमरूद, नींबू, अनार, श्रीफल-नारियल आदि सुन्दर फलों को जिनेन्द्र भगवान के आगे चढ़ाकर फल पूजा करनी चाहिए आठों द्रव्य को मिलाकर एक साथ अर्घावतारण कर पूजा करे। पुष्प एवं गंध जिन-भगवान के चरणों पर ही चढ़ाना चाहिए। सिद्धान्त ग्रन्थ में लिखा है-

"ण्हरणोवलेण समज्जण छुट्टावण, फुल्लारोहण, धूप दहणादि वावारेहि जीववट्टाविणाभवीरहि विणा पुजकरणाणु बत्तीदोच॥श्री वीरसेन स्वामी कृत कसायपाहुड जयधवलपद १००"

श्रावक धर्म में पूजा के समान सत्पात्र दान भी मुख्य बताया है। दान चार प्रकार का है १. आहार दान, २. ज्ञान दान, ३. औषध दान, ४. अभय दान। हे भव्य जन! प्रथम दान का फल सुनों -

ज्ञानवान ज्ञानदानेन निर्भयोऽभय दानतः।
अन्न दानात्सुखी नित्यं, औषधेन निरोगिता॥

अर्थात् ज्ञान दान देने से निर्मल सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है, अभयदान से सप्त प्रकार के भयों से रहित जीव शुद्ध सम्यग्दृष्टि होता है। अन्नदान करने से आहार दान से सतत सुखी होता है। अर्थात् पवित्राचरणी होता है और औषध दान देने वाला सर्वथा रोग रहित स्वस्थ शरीर प्राप्त करता है। जिससे नाना प्रकार के व्रतोपवास त्याग तप करने में समर्थ होता है।

दान से सर्व प्राणी वश में होते है। वैर का नाश होता है। शत्रु भी मित्र हो जाते है। सर्व कष्ट स्वयमेव टल जाते है।

सुदान से भोग यश और सुख प्राप्त होता है शत्रुओं पर विजय, व्याधियों का नाश, विद्या की प्राप्ति और युवती जनसमागम सुदान से अनायास मिलते हैं।

सुदानात् प्रापयेत भोगा सुदानात् प्राप्येत यशः।
सुदानाज्जायते कीर्ति सुदानाद् प्रापयेत सुखम्॥
दानेन शत्रुर्जैतव्यः व्याधिर्दानेन नश्यति।
दानेन लभ्यते विद्या दानेन युवती जनः॥

दान का महान फल है। पूर्व भव में दिये हुए दान के प्रभाव से वृषभदेव तीर्थङ्कर हुए, प्रथम चक्रवर्ती भरत भी दान के प्रभाव से हुए, कामदेव बाहुबली स्वामी, सेनापति जयकुमार ये आहारदान के फलस्वरूप ही हुए। नाना प्रकार के भोगों का समागम दान ही से मिलता है।

निरतिचार शील पालने अष्ट ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती हैं। पाप का नाश होता है लोक में सुकीर्ति व्याप्त होती है। परभव में इन्द्रादिक सम्पदा का लाभ होता है। शील के प्रभाव से सेठ सुदर्शन महाराज यशस्वी हो परमपद को प्राप्त हुए। अनेकों सतियां देवों द्वारा पूज्य हुईं शील संसार में कल्याणकारी है। अभिमान आत्म-पतन का मूल कारण है। लेकिन अहंकार से युक्त क्रोधी भी नारद शीलव्रत पालने से परम्परा से उच्चगति

प्राप्त कर लेता है। राजा नल की रानी शील के प्रभाव से दुःख के भार से रहित हुई सीता शील के नाम से जगविख्यात हुई।

तप भी आत्मा का शोधक हैं। तप से कर्म कलंक नष्ट हो जाता है। पांचों इन्द्रियों और मन वश में हो जाते है। तीनों गुप्तियों की सिद्धि, केवलज्ञान की लब्धि तपश्चरण से होती है। तप के प्रभाव से सनत्कुमार चक्रवर्ती अद्भूत रूप सम्पदा पाकर मोक्षपद प्राप्त करने में समर्थ हुए। हे भव्यात्माओं! शुभ भाव रूपी जल से सींचा गया धर्म रूपी वृक्ष नियम से स्वर्ग-मोक्ष रूप फल को प्रदान करता है। भावरहित क्रिया निष्फल है। अतः परिणाम के बहु-सम्पदा फलती है। बाह्य भेष अन्तरङ्ग परिणति भाव बिना सम्यक्, उचित उत्तम फल नहीं दे सकता। नवविधि चौदह रत्न षट खण्ड का अधिपति चक्रेश्वर भरत भाव विशुद्धि से अन्तर्मुहुर्त में केवली भगवान हो गये और भी अनेकों सिद्ध हुए वे भाव विशुद्धि से ही हुए हैं। अतः हे भव्यजन हो! भावों को प्रतिक्षण निर्मल कषाय रहित, विकार रहित बनाओ।

भाव शुद्धि का अङ्ग है दया भाव । चार प्रकार का दान दयादान सहित विशेष फलदायक होता है। जिस प्रकार सर्व गुणों की जड़ विनय है, पाप का मूल लोभ है, सकल अनर्थों की जड़ अभिमान है, उसी प्रकार धर्म की मूल दया है। दया का सम्यक् रूप से पालन सम्यक्दृष्टि ही कर सकता है।

सम्यग्दर्शन सप्त तत्व नव पदार्थों के अवगम से होता है। जीवादि का अवगम गुरु उपदेश से होता है। विचक्षण वीतरागी पुरुष ही सत्यार्थ वस्तु स्वरूप का उपदेश करने में समर्थ हैं- सम्यग्दर्शन पापरूप अंधकार का नाशक है। संसार सागर से पार करने का नौका-जहाज समान है। माया बल्लरी के छेदन की तीक्ष्ण दांतला समान है। पुण्यकर्म का पुञ्ज है। सम्यक्त्व के प्रभाव से नरक तिर्यञ्च दरिद्रता विकलभय आदि के दुःख

नहीं होते। सम्यदृष्टि जीव सदा उच्चकुल चक्रवर्ती इन्द्र, नागेन्द्र, अहमिन्द्र आदि के श्रेष्ठ पदों को प्राप्त करता है।

सम्यग्दर्शन स्थिरता के लिए अठारह दोष रहित छियालीस गुण सहित वीतरागी अरहंत परमेष्ठी की भक्ति कैवल्यपद धारी सर्वज्ञ भगवान की वाणी और परमनिर्ग्रन्थ बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित वीतरागी, साधु गुरुओं की भक्ति कारण है। वह सम्यग्यदर्शन श्रावक धर्म की नींव है। सम्यग्दृष्टि श्रावक के १२ अणुव्रत हैं—पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रत। इन बारह व्रतों का निर्दोष पालन करने वाला श्रावक सोलहवें स्वर्ग तक जाने का अधिकारी है। सम्यग्दर्शन सहित दिगम्बर मुनियों के पांच महाव्रत हैं। जो पुरुष महादुर्धर महाव्रत पालने में समर्थ नहीं है। वे श्रावक अणुव्रत पालन कर गृहस्थ धर्म की सिद्धि करते हैं। यतिधर्म पालन कर शीघ्र मोक्ष सुख पाते हैं और परम्परा से वे निर्वाण की प्राप्ति करते हैं। यह महाव्रत रूप धर्म अति कठिन है।

इस प्रकार केवली भगवान ने धर्मोपदेश देकर भव्य प्राणियों का अनिच्छक उपकार किया। प्रभु का उपदेश सुन महीपाल कुमार ने राजा सहित श्रावक धर्म स्वीकार किया। निर्मल गुरु उपदेश भव्यों के हृदय को स्पर्श कर उन्हें कल्याण मार्ग पर शीघ्र ला देता है। पुनः महीपाल ने अपने और रानियों के पूर्व भव पूछे तदनुसार श्री प्रभु कहने लगे। "तुम पूर्व भव में धन्य नाम के वैश्य थे। तुम्हारी दो पत्नियां थी, तुम्हारा भाई मदन था, उसके भी दो पत्नियां थीं। एक समय तुम्हारे गांव में दिगम्बर साधु आये। तुम मिथ्यात्व से ग्रस्त थे। शुभोदय से मुनिराज के दर्शनार्थ गये और श्री गुरु का उपदेश सुनने लगे।" वे कह रहे थे कि हे भव्य आत्माओं, मनुष्य पर्याय, उत्तम सुन्दर शरीर, सर्व अवयव, धन, दौलत, कुटुम्ब, परिवार ये सर्व धर्म या पुण्य के ही प्रतिफल हैं। इसके विपरीत परिस्थितियां पाप फल हैं। देखा जाता है पुण्योदय से कोई जीव राजाधिराज होता है, वह पालकी में आरुढ़ होकर चलता है। और दूसरा कोई पापोदय से उस पर

छत्र लगाये है, चमर ढोर रहा है तो कोई पालकील को कन्धे पर लिए जा रहा है। एक हृष्ट-पुष्ट सुन्दर है तो दूसरा दीन-हीन दरिद्री, दुःखी हुआ पड़ा है। कई धन जन सम्मान हैं कोई भरपेट भोजन भी नहीं पाता। एक बड़भागी कहलाता है दूसरा मन्द-दुर्भागी। यह सब क्यों? पुण्य-पाप के फल स्वरूप हैं। पुण्य-पाप को प्रत्यक्ष फल देखकर भी क्यों जीव संशय की तुला पर सवार है यही आश्चर्य है। "प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणम्" तुम धर्म और धर्म के फल में शंका मत करो। तुमने भी पूर्वभव में पुण्योर्जन किया था, उसी से यहां धनवान, रूपवान और कलागुण निधान वीर हुए हो। तब वे दोनों कुमति बोले, हे साधु! परलोक कुछ भी नहीं है। परलोक जाता हुआ कोई जीव दिखलाई नहीं देता और न कोई परलोक से आकर उस लोक की चर्चा वार्ता ही करता है।

इस पर श्री गुरु बोले—हे भद्र धन्य हो तुम कुशास्त्र से भ्रम में मत पड़ो। देखो व्यंतरादि परलोकादि का विवरण बतलाते हैं वे प्रत्यक्ष कहते है। कि मैं अमुक पर्याय से आया हूँ? बहुत से जीवों को पूर्व जातिस्मरण हो जाता है। जिससे वे अपने पूर्वभव के वृतान्त को जानकर बतलाते हैं। हे भव्योत्तम! तुम व्यर्थ शंका मत करो। मिथ्यात्व का वमन करो। सम्यक्त्व धारण करो, इस प्रकार महापुण्याधिकारी गुरु का सदुपदेश सुन "धन्य नामक वैश्य को प्रबोध जाग्रत हुआ। उसका अनन्त संसार वर्द्धक मिथ्यात्व नष्ट हो गया। भक्तिभाव से गद्‌गद् हृदय उठकर गुरु चरणों में उत्तमाङ्ग झुकाकर नमस्कार किया। हर्ष से वन्दना कर स्तुति करने लगा।" हे मुनीन्द्र आपके वचनामृत का पान कर मेरा मोह-मद विष उतर गया। मिथ्यात्व तिमिर नष्ट हुआ। सम्यग्ज्ञान प्रकाशित हुआ अज्ञान नष्ट हुआ। सम्यक् बुद्धि जमी मैं धन्य हुआ आज मेरा जन्म कृतार्थ हुआ। हे मुनीश प्रसन्न होइये मुझे धर्मोपदेश दीजिये। शरण में लीजिये मुझे संसार समुद्र से पार उतारिये आप ही भवसागर से पार करने में जहाज के समान हैं। आप मेरा कल्याण करें। इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्री मुनिराज ने धर्मोपदेश

दे उसे श्रावक धर्म स्वीकार कराया। कर्मों के मंद उदय से धन्य ने श्रावक के बारह व्रत धारण कर सम्यक्त्व ग्रहण किया। मिथ्यादृष्टियों का कुसंग छोड़ा वीतरागी साधु की शरण ग्रहण की तन-मन-धन से सच्चे निष्कषायी निष्परिग्रही साधु सन्तों की सेवा में रत हुआ। आहारादि दान देना, वैयावृत्ति करना आदि में अपने को लगाया। धन्य के समान उसकी दोनों स्त्रियों ने भी जिनधर्म स्वीकार किया। जिनधर्म महान है उदार है। प्राणीमात्र को इसके धारण और पालन का अधिकार है यह सार्वभौम राज धर्म है। धन्य की प्रार्थना और धर्म की प्रभावना के हेतु श्री मुनिराज एक माह तक वहीं रहे। सत्संग के प्रभाव से मदन की दोनों पत्नियों ने भी श्री जैन धर्म स्वीकार कर लिया किन्तु तीव्र मिथ्यात्व के उदय से या यों कहिये खोटा भवितव्य होनहार से मदन ने दुराग्रह मिथ्या हठ नहीं छोड़ी। वह रातदिन इनसे द्वेष करने लगा। कहा है "जैसी हो भवितव्यता तैसी सहाय" अर्थात् जिसका जैसा शुभाशुभ होनहार होता है। उसे वैसा ही सहायक मिल जाता है।

जो हो ये पांचों जीव धन्य और इसकी दोनों पत्नियां एवं मदन बड़े भाई की दोनों पत्नियां जिनधर्म में दृढ़ हो व्रत नियम शील सत्य त्याग उपवास, जिन पूजन मुनिदान आदि का बड़े उत्साह से पालन करने लगे। सम्यक् प्रकार जिनधर्म आराधना कर अन्त में समाधि मरण-सम्यक् मरण अर्थात् रौद्र परिणाम रहित मरण कर पांचों ही सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए। वहां पांच पल्य तक देवों के सुख भोगकर तुम "धन्य का जीव महीपाल हुए हो" वे चारों स्त्रियों के जीव तुम्हारी चारों पत्नियों हुई हैं।

हे महीपाल पूर्व जन्म में जिनधर्म का सेवन अति अनुराग से किया। इसके फलस्वरूप यहां तुम्हें रूप, सम्पदा, वैभव, कला-विज्ञान की प्राप्ति हुई है। इन चारों स्त्रियों ने भी तुम्हारे साथ शील-संयम् व्रतों का पालन किया। जिनधर्म का उद्योत किया इसी से अति-रूपवान, गुणवान, साहसी तुम्हारी पत्नियां हुई हैं। सर्वसुख सम्पन्न होने का कारण पूर्वभव

में की हुई जिनपूजा और मुनि को आहार दान ही है। धर्म का पालन भव-भव में सुखकारक होता है।

मदन का तीव्र मिथ्यात्व कर्म उदय में था। उसने मिथ्या भाव से अज्ञानवश बाल मरण किया। जिससे वन में व्याली हुआ वहां से मरकर नरक में गया। दीर्घकाल तक घोर दुःख सहे। नरक की यातनाऐं अपार हैं नारकी का वैक्रियक शरीर होता है। वहां अकाल मरण नहीं, क्षणभर भी सुख शान्ति नहीं। रातदिन हर पल दुःख ही दुःख है ऐसे भयंकर दुस्सह वैदनाओं को सह आयुपूर्ण कर वह मदन का जीव रत्नपुर के राजा बैरीसिंह के यहाँ अथर्णव नाम का मंत्री हुआ। हे भाई पूर्वभव में जिसका जिसके साथ प्रेम व द्वेष होता है वह अन्यभव में भी जाता है।

हे भद्र! चन्द्रलेखा का जीव पूर्वभव में अथर्णव की स्त्री थी इसलिए उस पर आसक्त हो अथर्णव ने तुम्हें घोर सागर में गिराया। हे महीपाल! पूर्व पुण्य के अतिशय से तुम सागर तिर पुनः स्त्रियों के समागम को प्राप्त हुए। पुण्ययोग से मनुष्य के जल-अग्नि, हिंसक प्राणी कृत उपसर्ग, भय अनायास टल जाते हैं। समस्त विघ्न मेघपटल सम विलीन हो जाते हैं।

दीपक से जिस प्रकार दीप जल जाता है उसी प्रकार साधु समागम, सद्गुरु उपदेश से अन्तः ज्योति प्रकाशित हो जाती है। केवली प्रभु की वाणी द्वारा पूर्वभव सुनकर महीपाल को भी जातिस्मरण हो गया। उसे अपने और अपनी चारों रानियों के पूर्वभव प्रत्यक्ष दर्पण में प्रतिविम्ब के समान स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगे। वह क्षणभर में समस्त परिस्थतियों से अवगत हो गया। संसार की विडम्बना उसके समक्ष घूमने लगी। संसार शरीर भोगों का नश्वर स्वभाव उसके सामने प्रत्यक्ष था।

महीपाल ने हाथ जोड़ नमस्कार कर कहा हे भगवन्! आपने मेरा पूर्व जन्म का जैसा विवरण किया मैं इस समय प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। हे नाथ! यह संसार असार है। इसमें रंचमात्र भी सुख नहीं। आत्म-सुख ही

सच्चा सुख है। जहां निराकुलता है वहीं शान्ति है। वह आत्मा के सिवाय अन्यत्र कहीं नहीं है। इसलिए आत्मा ही अपनी जिन वस्तु है। उसकी प्राप्ति ही निज स्वभावोपलब्धि है। यही सच्चा सुख मोक्ष सुख है, हे प्रभो! आप दया कर मुझे आत्मसिद्धि की साधक जिन दीक्षा प्रदान कर कृतार्थ कीजिये। मैं दिगम्बरी दीक्षा धारण कर स्थायी शिव सुख पाना चाहता हूँ। हे प्रभु! आप दीक्षा देकर कृतार्थ करें।

केवली प्रभु ने कहा—हे भव्योत्तम! इस समय तेरे मोहनीय कर्म का उदय है इसलिए अभी दीक्षा-धारण करने की योग्यता नहीं है। दान आदिक द्वारा संचित पुण्य के फल को अभी भोगो। महीपाल आगे तुम्हें योग मिलेगा।

उसी अवसर पर राजा नृसिंह ने संसार विरक्त हो अपने पुत्र विजयसिंह को राज्यभार देकर भगवती जिनदीक्षा धारणकी। जो प्रबुद्ध सत्पुरुष हैं वे संसार भय से भीत आत्म-कल्याण करने में विलम्ब नहीं करते हैं। महाराज नृसिंह दिगम्बर मुनिराज हो कठोर तपश्चरण में लीन हुए। पंचेन्द्रिय विषयों का त्याग कर शुद्ध आत्म-स्वरुप का चिन्तवन करने लगे।

महीपाल कुमार अपनी चारों स्त्रियों सहित केवली प्रभु और नृसिंह मुनिराज को नमस्कार कर अपने घर गया। श्रावक के व्रतों को निरन्तर दृढ़ता पूर्वक-पालन करने लगा। राजा नृसिंह की प्रशंसा एवं गुण चिन्तवन करते हुए बहुत-सा काल धर्म सेवन पूर्वक व्यतीत किया।

एक दिन महीपाल सुख से बैठा था। उसी समय रत्नसंचयपुरी से एक सेवक ने आकर पत्र दिया। महीपाल ने हर्षोत्फुल्ल हो राजा विजितारि की कुशल क्षेम पूछी। राजनीति निपुण कुमान ने फिर मुहर खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था।

हे महीपाल! आदरपूर्वक प्रीति से राजा आदेश देते हैं कि आप शीघ्र आकर मेरी और राज्य की शोभा बढ़ाये। हमारा जीवन व राज्य धर्म ध्यानपूर्वक सानन्द चल रहा है, किन्तु आपके बिना उदास है। हमारे पुत्र नहीं इसलिए हे आर्य! आप ही हमारे पुत्र हैं। अतः शीघ्र आओ। जिस प्रकार चकोर-चन्द्रमा को, मयूर-मेघों को, चकवा सूर्य को, पतिव्रता-शीलवती नारी-पतिदेव को, गजेन्द्र-विन्ध्याचल अटवीं को चाहता है उसी प्रकार हम तुम्हारे दर्शन को चाहते हैं। आपके गुणों का श्रवण हमें कर्णप्रिय है। आपका गुण-स्मरण मन को प्रफुल्ल करता है। आपके नाम उच्चारण में जिह्वा हर्षित होती है और आपके दर्शन को नेत्र लालायित हो रहे हैं। गुणवान पुरुष, कान्ति मान मणि, राजहंस जिनके आश्रय रहें उनको सुशोभित करते हैं। जिसको छोड़ देते हैं। उसकी हानि करते हैं। इस प्रकार महीपाल पत्र पढ़ के अति हर्षित हुआ। पुनः विजयसिंह राजा के समीप पत्र का अभिप्राय निवेदन किया। राजा विजयसिंह ने भी उसके अन्तरङ्ग का अभिप्राय समझकर तदनुसार अनुज्ञा प्रदान की।

राजाज्ञानुसार कुमार महीपाल ने अपना कटक तैयार किया। उत्तम जहाज तैयार किया। सभी सामग्री एकत्रित कर शुभ दिन शुभ मुहूर्त में महीपाल कुमार ने प्रस्थान किया। मार्ग में अनेक राजाओं से सेवित होता हुआ अल्प दिनों में ही वह रत्नसंचयपुर पहुंचा।

जिस प्रकार कमलिनी में भ्रमर प्रवेश करता है, गजराज नर्मदा नदी में कमनीय, कामिनी में काम और स्वर्ग में इन्द्र प्रवेश करता है उसी प्रकार रत्नसंचयपुर में प्रवेश किया। नगरी अति मनोहर लग रही थी। ध्वजाएं फहरा रहीं थी। चारों ओर उत्सव मनाए जा रहे थे। सर्वत्र धर्मानुष्ठान हो रहे थे। नारियां सज-धज कर मंगल गान कर रही थीं। बाग-बगीचों मन्दिरों की शोभा अद्वितीय थी सब देखता हुआ नगरी में प्रवेश किया। उधर से राजा विजितारि ने समक्ष आकर प्रेम से स्वागत किया। स्नेह वश हृदय से लगाया और मनोभाव व्यक्त किया। हे कुमार

हम अब संसार शरीर भोगों से विरक्त हुए हैं। ये भोग भुजंग हैं। हमें अब आत्म-कल्याण करना है। मैं जिनेश्वरी दीक्षा धारण करुंगा। आप राज्य सम्भालें प्रजा का प्रयत्न से पालन करें। इस प्रकार कह कुमार महीपाल को राजमुकुट पहनाकर राजतिलक कर अपना सब भार सौंप दिया।

सम्पूर्ण विषय-वासना नष्ट होने पर साधर्मी जनों को नाना भांति के शुद्ध पदार्थ बनवाकर भोजन कराया। नगरी में नाना उत्सव किये और फिर तीर्थबन्दनादि के लिए प्रयाण किया।

विपुलाचल (राजगिरी), पावापुर, चम्पापुर, मन्दारगिरी, उर्जयंत गिरी, (गिरनारजी), श्री सम्मेदशिखर आदि निर्वाण भूमियों में अनेक सम्पदा सहित तीर्थयात्रा की। साथ में आये हुए लोगों को विपुल धनराशि दान की। जिससे सभी लोग दूने उत्साह से पूजा दान आदि करने में प्रवृत हुए।

वह पुण्यकार्य में ही निरन्तर प्रवृति करता था। सत्य भाषण करना दयाभाव रखना सत्पात्रों को दान देना जिनवचन सुनना दिगम्बर गुरुचरणों में पैदल चल कर वन्दना करना। सेवा वैयावृत्ति करना। स्वयं बुद्धि से पात्र, सुपात्र, अपात्र, कुपात्र, आदि की परीक्षा करना इत्यादि गुणों से भूषित महीपाल से वसुन्धरा निहाल हो उठी।

दान देना ही महीपाल राजा के हाथों का भूषण था। हृदय का आभूषण क्षमा, मस्तक का आभरण जिनेन्द्र की आज्ञा, कर्णालंकार जिनागम श्रवण, ललाट का किरीट था गुरु चरणों में वन्दन, मन की मणि थी तत्वों का चिन्तन। इस प्रकार सभी निर्दोष आभूषणों से महीपाल अपने यश से सर्वलोक को भूषित किए हुए था। उसका प्रताप सूर्य के प्रताप समान व्याप्त था।

यद्यपि महीपाल राजा की कीर्ति लता गगनाङ्गण तक लहरा रही थी। सर्व प्रकार की सुख सम्पदा प्रचुर मात्रा में व्याप्त थी। पांचों इन्द्रियों के विषय प्रतिस्पर्धा करते हुए बढ़े-चढ़े थे। परन्तु महीपाल इनमें तनिक

भी रंजायमान नहीं हुआ। सतत अनासक्त भाव से ही विषय सेवन करता रहा सदैव वैराग्य की ओर ही लक्ष्य रहा। ठीक ही है –

यत्रैवाहित धी पुंसा श्रद्धा तत्र जायते।
यत्रेव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते॥

अर्थात् पुरुष की बुद्धि जिसमें लगती है उसी में श्रद्धा रुचि विश्वास उत्पन्न होता है उसी में मन तल्लीन होता है।

महीपाल महाराज राज्य में नहीं रचे। उन्होंने देखा कि मेरे पुत्र योग्य हो गये हैं। उसने कीर्तिपाल को युवराज पद पर आसीन कर दिया। अपने विक्रम से प्राप्त अनेक देशों की पालना के लिए यथायोग्य अन्य तीन पुत्रों को नियुक्त कर दिया। स्वयं विरक्त चित्त राज्यभार त्याग की इच्छा से धर्मध्यान रत श्री गुरु चरणों के सान्निध्य की प्रतीक्षा करने लगा। विषयों से अति विरक्त क्रमशः ज्येष्ठ पुत्र को समस्त राज्यभार अर्पित कर दिया। स्वयं विषय भोगों से उदास हो परम गुरुओं का ध्यान करने लगा।

"जहां चाह तहां राह" "भावना भव नाशिनी" "जैसी हो भवितव्यता तैसी मिले सहाय" के अनुसार कुछ ही दिनों के बाद उस नगरी में अनेकों सुज्ञानी मुनिवृन्दों सहित परम तपस्वी वीतरागी, उत्कृष्ट ज्ञानी ध्यानी श्री १०८ धर्मघोष नामा मुनिराज पधारे। मुनिराज का आगमन सुनकर राजा महीपाल अत्यानन्दित हुआ। नगर में आनंदभेरी बजने लगी। भक्तजन नर-नारी नाना प्रकार के फल पुष्प अक्षतादि अष्टद्रव्य पूजन पात्र सामग्री ले ले कर मुनिदर्शन गुरुपूजन के लिए चल पड़े महाराज महीपाल भी राज्य से निवृत्त हो बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्याग करने के उद्देश्य से गुरु चरणों में आ पहुंचे। बड़े चाव और भाव से मुनिराज के चरणाविन्द में नमस्कार किया। तीन प्रदक्षिणा दी। पुनः हाथ जोड़ मस्तक झुका नमस्कार कर अष्ट द्रव्य से पूजा की स्तुतिकर नम्रता से विनयावनत हो प्रार्थना की "हे प्रभो!" मैं संसार भीत हूँ। आत्म-कल्याणेच्छु हूँ मुझे भवतारक शिवकारक भगवती जिन दीक्षा प्रदान कर अनुग्रहीत कीजिये।" परम्

करुणासागर दीनदयाल पतित-उद्धारक भव्यजीव प्रतिबोधक मुनिराज ने उसकी भावनानुसार दिगम्बर जिनदीक्षा प्रदान की। केशोत्पाटन कर समस्त विषय विकारों के त्यागी परमशान्त महीपाल मुनिराज बाह्यादृष्टि को अन्तरङ्ग कर घोर तपारुढ़ हुए।

सम्पूर्ण बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित ईर्यापथ विधि से विहार किया। समस्त शास्त्रों के रहस्य को हृदयंगम किया। मोह का प्रचार संकुचित कर डाला। तत्व का रहस्य समझ समभाव धारण किंया। तेरह प्रकार का चारित्र पालने लगे। समतारूप सामायिक में तल्लीन हो गये। शुत्र-मित्र, कांच-काञ्चन, लाभ-अलाभ, निन्दा-स्तुति, तृण-मणि, सुख-दुःख तथा प्रासाद-वन में साम्य भाव धर अपने स्वरूप में स्थिर हुए। उत्तरोत्तर दुर्द्धर तप तपने लगे। सकल विकल्प जालों की उलझन में निर्मुक्त स्वसंवेदन सच्चिदानन्द ज्ञान धन चैतन्य विलास रत्नत्रयी विमलबोध सुधामृत पान के आस्वादी हो कर्म कालिमा का प्रक्षालन करने लगे। अनेक प्रकार वृत्ति परिसंख्यान तपश्चरण कर इन्द्रिय और कषायों का दमन किया। धर्म ध्यान की पूर्णता कर शुक्ल ध्यान आरम्भा, संशयादि दोष रहित निर्मल सम्यग्ज्ञान की ज्योति प्रकाशित की। ध्यान रूपी अग्नि धांय-धांय जलने लगी। समस्त योग सिमट गये। पृथकत्व वितर्क, एकत्व वितर्क ध्यान की ज्वाला में घातिया कर्मरूपी ईंधन भस्म हो गया। धुँआ नष्ट हुआ राख उड़ गई, शुद्धतर आत्म-प्रकाश रह गया। चारों घातिया कर्मों के भस्म होते ही सकल लोकालोक को युगपत प्रतिभाषित करने वाला पदार्थ और उनको सम्पूर्ण पर्यायें एक साथ स्वच्छ स्फटिक समान उनके ज्ञान में झलकने लगी।

सर्वज्ञ सकल लोक के ज्ञाता दृष्टा अर्हंत केवली हो गए तब चारों निकाय जाति के देवगण हर्ष सहित आये। इन्द्र की आज्ञानुसार कुबेर ने गंधकुटी की सभामण्डप की रचना की चारों ओर बारह-सभा प्रेक्षण कक्ष रचे। मध्य में रत्नजड़ित सुवर्णमय सिंहासन तीन कटनियों के ऊपर

स्थापित किया। सिंहपीठ पर कञ्चनमय सहस्र दल कमल बनाया। उस कमल कर्णिका के मध्य सिंहासन से चार अंगुल प्रमाण अधर आकाश में (अंतरिक्ष में) महीपाल केवली..... जिन..... विराजे। यह है त्याग का महत्व कहा है "रज्यते त्यज्य मानेन भज्यते रज्जमानेन" अर्थात् लक्ष्मी का जो त्याग करता है ठुकराता है उसके पीछे यह दासी समान.. ..... दौड़ती है और जो उसे प्यार करता है उसे वह ठुकरा कर निकल जाती है, भगवान ज्यों-ज्यों त्याग करते गये पीछे-पीछे कुकुर के समान पूंछ हिलाती दौड़ी। समवसरण सभा मण्डप में पहुँच गई तो भी प्रभु ने परवाह नहीं की। उसका स्पर्श भी नहीं किया। स्वयं अधर आकाश में विराजे।

बारह प्रकार के सभा भर गई। देव, मनुष्य, विद्याधर, तिर्यञ्च सभी उपदेशामृत पान करने के लिए समन्वित हुए । श्री महीपाल केवली भगवान की धर्मोपदेश दिव्य-ध्वनि प्रारम्भ हुयी। द्विविध-यति, श्रावक धर्म का दिव्य उपदेश हुआ। अनेकों प्रतिबुद्ध मुनि हो गये। कितने ने श्रावक धर्म अंगीकार किया। कितने ही पशु-पक्षियों ने श्रावक धर्म अंगीकार किया। जाति विरोध वैर तो प्रभु दर्शन मात्र से ही नष्ट हो गया अनेकों भव्यों ने मुनिव्रत की अनुमोदना कर विपुल पुण्यार्जन किया। केवली प्रभु ने बतलाया जीव दया सबसे बड़ा धर्म है। मांस, शराब, अण्डे, मछली सेवन के पाप के बराबर अन्य कोई पाप नहीं है, हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह संचय महापाप हैं। दूसरे प्राणी का मन से भी अहित विचारना दुर्गति का कारण है। सब जीव समान हैं। सबको अपनी-अपनी योग्यतानुसार आत्म-विकास करने का अधिकार है। यथायोग्य मर्यादानुसार सब जिन-धर्म पालन कर णमोकार महामंत्र की आराधनाकर अपने आत्मा को पवित्र बना सकते है। हे भव्यो! "जीओ और जीने दो"

LIVE AND LET LIVE

यह आपका कर्तव्य है। परस्पर प्रेम सहानुभूति क्षमा वात्सल्य और मित्रता का व्यवहार करना चाहिए। दरिद्रों को सताना आत्मा की वंचना

करना है। अपध्यान दुर्गति का कारण हैं। सतत् समभाव धारण करना मुक्ति का साधन है। परधन, पर-महिला आदि आत्मा का नाश करने वाले हैं । इनकी ओर कदाऽपि दृष्टि नहीं डालनी चाहिए। संतोष आनन्द का मूल है। तृष्णा नागिन है। आशा पिशाचिनी है। संसार शरीर भोगों की तृष्णा को जीतने वाला सच्चा पुरुष है। महात्मा है। और परम्परा से भगवान बनने वाला है इत्यादि केवली प्रभु का उपदेश सुन कितने ही भव्यजन सम्यक्त्वी हो गये। इस प्रकार महीपाल केवली प्रभु सूर्य विहार करने लगे। जहां-जहां प्रभु पहुंचते कुबेर गंधकुटी सभामण्डप तैयार करता और वीतराग प्रभु का सदुपदेश करवाता। मिथ्यारूप कुमार्ग से अज्ञानाधंकार का उच्छेद करते। सम्यग्ज्ञानलोक विस्तारते प्रभु भव्य-जनों को आनन्द कर्त्ता हुए। रत्नत्रय मार्ग प्रवर्त्ता महीपाल केवली भगवान की ५०० वर्ष आयु थी। आयु के ६ माह शेष रहने पर केवली समुद्घात कर शेष तीन कर्मों, नाम गोत्र और वेदनीय की स्थिति को आयु कर्म के बराबर किया। चारों अघातिया समान स्थितिरूप हो गये तब चतुर्थ इच्छित क्रिया प्रतिपाति चौथ शुक्लध्यान आरम्भा और चारों ही कर्मों को नष्ट कर मोक्षधाम-शिवधाम प्राप्त किया।

यह महीपाल चरित्र अत्यन्त मार्मिक रसीला पुण्यातिशय का द्योतक काव्य है। साहित्य प्रेमियों को भी आनन्द देने वाला है। सरस्वती गच्छरूप आकाश में यह चरित्र निर्मल चन्द्रवत कान्ति का धारक है। चन्द्र शुक्लपक्ष में वृद्धिंगत होता है और यह चारित्र मुनिजन समूह में वृद्धि पाता है। चांद भी निर्मल है और यह चारित्र भी उज्जवल है। चन्द्र अंधकार का नाशक है और यह काव्य पुराण खोटे मिथ्यापक्ष का घातक है। शशांक सप्तर्षि तारागणों से मान्य है और यह चरित्र श्रेष्ठ मुनि, ऋषिवृन्द को मान्य है। शशि-चन्द्र के समान यह काव्य भव्य-प्राणियों को आह्लान करने वाला है। मिथ्यातम नाशक है। विश्वभूषण गुरु गरिमा इस चरित्र में विशेष कवित्वशक्ति का परिचय दिया है। वस्तुत्व उनकी कवित्व शैली पराकाष्ठा में इस काव्य में प्रदर्शित है।

लेखक श्री कविराज चारित्रभूषण के गुरु सरस्वती गच्छान्तर्गत चारित्र चूड़ामणि भव्यों को चिन्तामणि समान विश्वभूषण जी थे। कुछ अंश ग्रंथ का भंग हो जाने से इनके विषय में पूर्ण परिचय उपलब्ध नहीं हुआ। जितना भाग-अंश समझ में आ सका लिखा है। अस्तु पाठकगण अन्यत्र कहीं से परिज्ञान करने का कष्ट करें।

इस काव्य की हस्तलिखित प्रति गिरिडीह के दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हुयी थी। वहीं पर मैंने उसे ढूंढ़िया भाषा से शुद्ध हिन्दी करने का प्रयास किया है, ग्रंथ अति प्राचीन और जीर्ण होने से कहीं समझने में कुछ त्रुटि रह गई हो तो विद्वज्जन संशोधन कर अध्ययन करने का प्रयत्न करें।

॥समाप्त॥

प० पू० उपाध्याय श्री १०८ निर्णय सागर जी महाराज द्वारा रचित, संपादित एवं निर्ग्रंथ ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित उपयोगी साहित्य

१. निज अवलोकन
२. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
३. हमारे आदर्श
४. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
५. नंगानंग कुमार चरित्र
६. धम्म रसायणं
७. मौनव्रत कथा
८. सुदर्शन चरित्र
९. प्रभंजन चरित्र
१०. सुरसुन्दरी चरित्र
११. जिन श्रमण भारती
१२. सर्वोदय नैतिक धर्म
१३. चारुदत्त चरित्र
१४. करकण्डु चरित्र
१५. रयणसार
१६. नागकुमार चरित्र
१७. सीता चरित्र
१८. योगामृत
१९. मीठे प्रवचन
२०. आध्यात्म तरंगिणी
२१. सप्त व्यसन चरित्र
२२. वीर वर्धमान चरित्र
२३. स्वप्न फल विचार
२४. भद्रबाहु चरित्र
२५. हनुमान चरित्र
२६. महापुराण
२७. कल्याणी
२८. योगसार प्राभृत
२९. ध्यानसूत्राणि
३०. भव्य प्रमोद
३१. सदार्चन सुमन
३२. तत्वार्थ सार
३३. कल्याणकारक
३४. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
३५. आराधना सार
३६. यशोधर चरित्र
३७. व्रतकथा संग्रह
३८. तनाव से मुक्ति
३९. उपासकाध्ययन
४०. सुभाषित रत्न संदोह
४१. राम चरित्र
४२. हरिवंश कथा
४३. नीतिसार समुच्चय
४४. आराधना कथा कोश
४५. क्षत्रचूड़ामणि
४६. तत्वार्थसूत्र संसिद्धि
४७. दशामृत
४८. सिन्दूर प्रकरण
४९. प्रबोध सार
५०. शान्तिनाथ पुराण
५१. तनाव से मुक्ति
५२. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
५३. सम्यक्त्व कौमुदी
५४. धर्मामृत
५५. कर्म विपाक
५६. पुण्य वर्द्धक
५७. पुण्यास्रव कथा कोश
५८. धर्म परीक्षा
५९. चौंतीस स्थान दर्शन
६०. अमरसेन चरित्र
६१. सार समुच्चय
६२. दान के अचिन्त्य प्रभाव
६३. पुराण सार संग्रह
६४. प्रद्युम्न चरित्र
६५. आहार दान
६६. सुलोचना चरित्र
६७. गौतम स्वामी चरित्र
६८. महीपाल चरित्र
६९. जिनदत्त चरित्र
७०. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
७१. चेलना चरित्र
७२. धन्यकुमार चरित्र
७३. सुकुमाल चरित्र
७४. कुरल काव्य
७५. धर्म संस्कार भाग-१,२
७६. प्रकृति समुत्कीर्तन
७७. भगवती आराधना
७८. निर्ग्रंथ आराधना
७९. निर्ग्रंथ भक्ति
८०. कर्मप्रकृति
८१. पूजा-अर्चना
८२. नौ-निधि
८३. पंचरत्न
८४. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
८५. भावत्रयफल प्रदर्शी
८६. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
८७. तत्त्वार्थ सूत्र
८८. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
८९. जलगालनः क्या, क्यों, कैसे?
९०. धर्मः क्या, क्यों कैसे?
९१. स्वाति की बूँद
९२. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
९३. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
९४. निश भोजन त्यागः क्यों?
९५. सच्चे सुख का मार्ग
९६. जिनदर्शन से निजदर्शन
९७. दिगम्बरत्वः क्या, क्यों, कैसे?
९८. अन्तर्यात्रा
९९. पंचपरमेष्ठी विधान
१००. श्री शांतिनाथ, भक्तामर, सम्मेदशिखर विधान
१०१. मेरा संदेशा
१०२. धर्मबोध संस्कार १,२,३,४
१०३. सप्त अभिशाप